पहचान

अन्तर्महाविद्यालयी पत्रिका

हिन्दी विभाग

मिराण्डा हाउस

विशेषः हिन्दी एवं हिन्दीतर साहित्य

• यह एक बड़ा अद्भुत समय है
पुरानी बुनियादें जब
रेत की तरह ढह रही हैं
हम भाई-बंधु ठीक तभी
टुकड़ों-टुकड़ों में बँटे जा रहे हैं
किसने अपनी आस्तीन के नीचे
जाने किसके लिए
कौन-सी हिंस्रता छुपी रखी है
हमें नहीं पता,
(सुभाष मुखोपाध्याय / बांग्ला)

• मिट गए वे तमाम निशान
जिस्म पर बन जाते हैं जो
अक्सर ज़ख्म हो जाने
के बाद
पर
नहीं भर सका वो नासूर
जो मुझे मिला किसी
सज़ा की तरह
जिसका कसूर मैंने किया ही नहीं था।
(रशिम रमानी / सिंधी)

• पेड़ न अस्तित्ववादी है
न आधुनिकतावादी
फिर भी उनके पास विचार तो हैं
ये वो बात है जिसे हम कलियों के
तौर पर देखते हैं
उनकी कामनाएँ फूल हो जाती हैं
(के० सच्चिदानंदन / मलयालम)

• घटती तेजी से अपनी स्मृति
खोती जा रही है
और इसमें मैं अपनी स्मृतियों
को खोता हुआ पाता हूँ
मैं बहुत पहले से जानता हूँ कि
स्मृति केवल आपराधिक ऐतिहासिक
दस्तावेज़ नहीं है
स्मृतियाँ हैं जो लगातार आती हैं
जड़, तने और टहनियों से
और जिंदा रहती हैं आसन्न
भविष्य के बाद भी।
(दिलीप चित्रे / मराठी)

• कुछ भी नहीं है दुनिया में
मन से बड़ा औ स्वप्न से आगे
कोई छीन नहीं पायेगा तुमसे
कोई लूट नहीं पायेगा
केवल तुम्हारे हैं
तुम्हारे द्वारा तय किए गये लक्ष्य
और जब तक बाकी है
इंसान होकर जिन्दा रहने का लक्ष्य
होंगे तुम सदा विजेता।
(प्रमोद पितांल / नेपाली)

संदेश

मिरांडा हाउस... नाम अपनेपन की भावना, लोकतांत्रिक लचीलापन और प्रत्येक युवा महिला के अनोखे सफर के जादू को उजागर करता है। वो सफर जो ईंटों की लाल दीवारों के इस नखरे के माध्यम से अपने विशाल रमणीय लॉनों, गलियों और मेहराबों के अपने समृद्ध सांस्कृतिक डिजाइनों, अत्याधुनिक तकनीक युक्त प्रयोगशालाओं और इमारतों और इसके अद्वितीय संवहनीय विकास के सिद्धान्तों के ज़रिये गुजरता है। इसके ईंट और मोर्टार के स्तंभों से अधिक, कॉलेज के स्तंभ वास्तव में इसके समर्पित संकाय सदस्य हैं जो प्रत्येक छात्र की उर्जा को बनाए रखते हैं और उन्हें उनके समग्र विकास के लिए आवश्यक परामर्श और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। गैर-शिक्षण कर्मचारी इस धागा में समान योगदानकर्ता हैं।

कुछ बड़ी दिलचस्प चीज़ें मेरी नज़र में आयीं जब मैंने बड़े जतन के साथ संगृहित कॉलेज के संस्थापक प्राचार्यों के संदेशों को 2017 की कॉलेज पत्रिका में देखा। उनके भाषणों में जादू और चमत्कार शब्द गूंजते हैं। सुश्री वेदा ठाकुर दास, कॉलेज की पहली प्राचार्या लिखती हैं- "मैं, मई 1948 को अपनी ड्यूटी में शामिल हो गई थी, जादूगरों की तरह मजदूरों ने ईंट पर ईंट फेंकी और रात भर में बड़ी दीवारें खड़ी हो गयी।" श्रीमती एस. कृष्णास्वामी, जो इनकी उत्तराधिकारी थीं, लिखती हैं,- "दस साल की छोटी अवधि में एक चमत्कार हासिल हुआ है, कॉलेज ने लापरवाह लालित्य के साथ अपने जोरदार प्रयासों में सफलता और विफलता दोनों को अपने प्रवाह में लिया है।"

कॉलेज से जुड़ा कोई भी व्यक्ति इसकी जादुई

और चमत्कारी वातावरण से मुक्त नहीं रहता है। वो वातावरण जो कॉलेज की शैक्षणिक, सांस्कृतिक और विस्तारण गतिविधियों से रहता है। कॉलेज की विरासत और महिमा हर रोज के जादू और चमत्कार से बनी हुई है जो कक्षाओं में जीवन्त चर्चा, उत्तेजक संगोष्ठियों, कविता, संगीत, रंगमंच, चित्रों और नृत्य की रचनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से शिक्षण, पर्यावरण और मानव अधिकारों के प्रति प्रतिबद्धता से सिंचित होती है।

कॉलेज को 2017 के बाद से तीन बार लगातार नेशनल इंस्टीट्यूट रैंकिंग फ्रेमवर्क (NIRF) द्वारा कॉलेजों के बीच ऑल इंडिया प्रथम रैंक से सम्मानित किया गया है। इस रैंक को बनाए रखने की अपार जिम्मेदारी कॉलेज के प्रत्येक सदस्य पर निरंतर कायम है। इस कॉलेज में मेरी यात्रा एक संकाय सदस्य के रूप में सत्ताईस वर्ष की है। और मुझे अब इसकी प्राचार्या के रूप में सेवा करने का सम्मान मिला है। जबकि मैंने इन 27 वर्षों में अपने सहयोगियों और छात्रों से बहुत कुछ सीखा है, पिछले दो वर्षों ने मुझे गैर-शिक्षण कर्मचारियों के समर्पित प्रयासों के महत्व की समझ प्रदान की है। यह सचमुच वास्तव में हर तरह से मुझे विनम्रता सिखाता है।

महाविद्यालय की समृद्ध विरासत, पिछले एक दशक में इसकी अपार वृद्धि के साथ-साथ अपने विस्तारों को न केवल इसके अपने ही बल्कि राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर बड़े समुदाय तक खोलने की क्षमता के कारणों से महाविद्यालय के प्रति मेरा आदर और विस्मय बना रहा है।

सरकारी एजेंसियों, उद्योगों, अंतरराष्ट्रीय और क्षेत्रीय विश्वविद्यालयों और बड़ी संख्या में सिविल सोसाइटी एजेंसियों के साथ रोमांचक सहयोग, पाठ्यपुस्तकों और परीक्षाओं के दायरे से परे शिक्षा के लिए प्रतिबद्ध है और महिला सशक्तिकरण और नेतृत्व के बड़े लक्ष्यों में

योगदान देते हैं। कॉलेज विचारों के प्रवाह, नव परिवर्तन, विघटन और सतत बदलाव का पर्याय रहने के बावजूद अपनी समृद्ध विरासत और संस्कृति के प्रति अपनी निष्ठा बनाए रखता है।

'पहचान' पत्रिका ने अपनी अस्मिता को कॉलेज की तरह बनाए रखा है - भावुक, जीवन्त, चिन्तनशील और मानव की आधारभूत स्वतन्त्रता - अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति समर्पित। मैं इस संस्करण के प्रकाशन के प्रति उत्कृष्ट प्रयासों में संकाय सदस्यों और छात्रों की संपादकीय टीम को बधाई देती हूँ।

मिरांडा हाउस समुदाय के प्रत्येक सदस्य की उत्कृष्टता, लोकतांत्रिक निर्णय लेने और सामूहिक ज्ञान की ओर प्रगतिशील व अग्रसर होने की भावना को बनाए रखने की निरन्तर और जोशीली प्रतिबद्धता ही मिरांडा हाउस का प्रतिनिधित्व करती है।

यही प्रतिबिंबन, आत्म जवाबदेही, आलोचनात्मक चिन्तन, प्रभावी विश्लेषण और बुद्धिमानी से नवाचार करने की क्षमता और सामर्थ्य हमें महाविद्यालय की सच्ची भावना को बनाए रखने में सक्षम करेंगे।

अनेक शुभकामनाएँ!

विजयलक्ष्मी नंदा
(प्राचार्या)

अपनी बात...

जीवन के अनेक रंग, साहित्य के अनेक रस और मनुष्य मन में भी अनेक भाव। निश्चित ही इनका अपना-अपना महत्व है। आकाश में भी तो सात रंगों के संयोजन से ही सुंदर और मोहक इन्द्रधनुष बनता है। पर यदि ये अलग-अलग रंग अपनी पृथकता रखे हुए परस्पर न जुड़े तो...? साहित्य में विभिन्न भाव व रस कथा, कविता में संयुक्त रूप से मिलकर भावों का संचार न करें तो...? अधूरापन रहेगा न... इसी तरह 'भारतीय साहित्य' कहते ही हम केवल हिंदी भाषा व साहित्य के इर्द-गिर्द देखने का मोह छोड़ हिंदी से इतर भारतीय भाषाओं के साहित्य को भी देखने-समझने की चेष्टा करते हैं। अपनी इसी कोशिश में हमने इस बार अपनी पत्रिका का विशेषांक 'हिन्दी एवं हिन्दीतर साहित्य' रखा है।

साहित्य मनुष्य की आन्तरिक अनुभूति एवं संवेदनाओं का अभिव्यक्त रूप होता है। भारत की अलग अलग भाषाओं में लिखे गए साहित्य में थोड़ी-बहुत भिन्नता के बावजूद समानता ही उसका केन्द्रबिन्दु है। सभी भारतीय भाषाओं में साहित्यिक धाराएँ लगभग समानान्तर रूप से प्रवाहित मिलती है। जब हम तुलसी या सूर के भक्तिपरक काव्य का अध्ययन करते है, जिसने मध्यकाल में व्यापक प्रवृत्ति के रूप में पूरे भारत की लगभग सभी भाषाओं को प्रभावित किया। नवजागरण काल में भी सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में कमोबेश एक जैसी आधुनिक चेतना का प्रसार हुआ। यह वह काल था जब भारत ने सदियों पुरानी सामाजिक व राजनैतिक गुलामी के कारणों को पहचान कर उनसे मुक्त होना शुरू किया। बांग्ला में बंकिम, शरत-चन्द्र व टैगोर, हिंदी में भारतेन्दु, तमिल में सुब्रह्मण्यम भारती व तेलुगू में गुरजाडा अप्पाराव जैसे

रचनाकारों की एक समान चेतना का आधार यही नव-जागरण था। हिन्दी में 'प्रगतिवाद' तथा तमिल में 'अभ्युदय' का आगमन एक साथ हुआ। भारतीय साहित्य का अध्ययन करते हुए हम ऐसे ही समान प्रेरणा, बिन्दुओं, सरोकारों व प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हैं।

भारत की भिन्न-भिन्न आस्थाएँ, संस्कृति एवं भाषा की बहुलता ही उसे विशेष बनाती है। हम अपनी विविधता और अनेकता का उत्सव मनाते हैं, जो सदियों से हमारी सामूहिक चेतना का हिस्सा रही है। पर....

आज हम भूल गए हैं कि भारत की आत्मा बहुलतावाद और सहिष्णुता में बसती है। यह बहुलता हमारे समाज में सदियों से विभिन्न विचारधाराओं के समाहित होने से आई है आज हम चारों ओर आक्रोशित प्रवृत्तियाँ देख रहे हैं। हर रोज बढ़ते अविश्वास, शक की निगाहों, टकराव और हिंसा से रूबरू हो रहे हैं। हम एक दहशत भरे समाज में रहने को विवश हैं। हम बर्बर और हिंसक हो गए हैं। मानवीयता और सहिष्णुता दम तोड़ रही है। — "पेड़ को पत्थर बनने में लगा है हजार वर्ष / आदमी देखते-देखते पत्थर बन रहा है।" हमें नहीं भूलना चाहिए कि एक अहिंसक समाज ही सभी वर्गों के लोगों खासकर वंचित व अलग-थलग किए गए लोगों की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित कर सकता है।

पत्रिका के इस अंक में छात्राओं ने भारत वर्ष की सामासिकता को उभारते हुए बतलाया है कि विरोध, हिंसा व घृणा किसी मुद्दे का हल नहीं। यहाँ संस्कृत से वाल्मीकि, कालिदास व बाणभट्ट हैं तो उर्दू के फैज और बांग्ला के नजरूल इस्लाम के रंग भी। पंजाबी की कविताओं की छटा है तो मलयालम की मिठास भी। इस अंक का विशेष आकर्षण नरगिस सुलताना द्वारा बांग्ला से हिंदी में अनुवादित मुहम्मद शहीदुल्लाह का महत्वपूर्ण पत्र है, जो वर्तमान समय में भी समस्याओं से जुड़ा प्रासंगिक है। पत्रिका के विषयानुरूप हमें लेख एवं कविताएँ बहुलता में मिली, परन्तु

स्थानाभाव के कारण सभी का उपयोग कर पाना संभव न था। छात्राओं का उत्साह व लगन निश्चित ही काबिले तारीफ है।

पत्रिका को हस्तलिखित रूप देने में कनक, सिमरन, अर्पणा, निशा भारती का विशेष योगदान रहा तो सामग्री संकलन में अपूर्वा, प्रियल, दीक्षा व शिवानी शर्मा का सहयोग सराहनीय रहा। पत्रिका में विशेष सहयोग देने के लिए एम.ए. द्वितीय, उत्तरार्ध की छात्रा निहारिका का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा।... इन सबको मेरा स्नेहाशीष... । अंत में मैं महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. विजयालक्ष्मी नेहा के सहयोग व स्नेहशीलता के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए उसकी विशेष सराहना की। हिन्दी विभाग अपनी इस 'पहचान' को और व्यापक बनाएं, उत्तरोत्तर अग्रसर रहें, इसी विश्वास और शुभकामनाओं के साथ—

कविता भाटिया

पहचान

(मिरांडा हाउस, हिंदी विभाग की वार्षिकी)

अंक - 8.

जुलाई - 2020

संपादक

डॉ. कविता भाटिया

सोच विचार पृष्ठ

- भारतीय साहित्य: अनेकता में एकता 9.
- गीतांजलि और मानवतावाद 17.
- काज़ी नज़रुल इस्लाम का विद्रोही स्वर 21.
- गुरु का महत्व 26.
- राष्ट्रीयता और भारतीय भाषाएँ 30.
- मलयालम साहित्य की दाढ़ी 37.
- वाल्मीकि : राम काव्य का जन्म 43.
- स्त्री अस्मिता का प्रश्न 48.
- पंजाबी कविताएँ : विविध रंग 54.
- भारतीय भाषाओं का साहित्य और हिंदी सिनेमा 65.

कविताएँ

- चाह 36.
- तुम्हारा गर्म हाथ 47.

पुस्तक समीक्षा

- अकेले होने का सुख 68.

फिल्म समीक्षा

- कॉमेडी या ट्रेजेडी 71.

सहयोग

- अपूर्वा, दीक्षा
प्रियल, शिवानी शर्मा
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

लेखन सहयोग

- निशा भारती
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)
- अर्पिता
(संस्कृत विशेष, द्वितीय वर्ष)
- कनक
- सिमरन
(बी. ए. प्रोग्राम, प्रथम वर्ष)

विशेष सहयोग

- निहारिका शर्मा
(एम. ए. हिंदी, उत्तरार्द्ध

कहानी पृ०

- रक्षक कौन 52.

विशेष

- मानवीय संबंधों की परस्परता 74.

Campus : आस पास

- जिन्दगी का फसाना 79.
- प्रेम की दास्तां 81.
- शिकायत है मुझे 85.
- सब जल रहा है... 88.
- इस दौर का रंग 90.
- अभिज्ञान शाकुन्तलम्-
आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता 92.

लेखक से मुलाकात 95.
साहित्य संसार 99.

भारतीय साहित्य : अनेकता में एकता

भारत एक विशाल भू-खण्ड है, इस पर रहने वाले लोग भारतीय है और उनकी विशिष्टता को 'भारतीयता' कहते हैं। भारतीयता कहते ही भौगोलिक, भाषिक, साहित्यिक व सांस्कृतिक एकता का बोध होता है। यह भारतीयता एक जीवन दर्शन है, जीने की कला है, जो बिना भेदभाव के समूची मानव जाति के उपयुक्त है। भाषा, भूगोल और जन की विविधता के बावजूद मानव मूल्यों की दृष्टि से एक वैचारिक एकता विद्यमान है। जैसे सामासिकता, अनेकता में एकता, सहिष्णुता आदि मूल्य भारतीय समाज की भारतीयता का परिचारक है।

भारतीयता का अर्थ है- भारत की समग्र परंपरा, भारतवर्ष की संवेदना, भारतवर्ष की पुरातन अद्यतन पृष्ठभूमि, भारतवर्ष की कला, भारतवर्ष का साहित्य। इन सबके अंदर एक ही भाव है, जो भारतवर्ष के प्राचीन दर्शन और भारत के अध्यात्म को जीवन से जोड़ता है। भारतीयता पूरे इतिहास का निचोड़ है, हमारे जीवन के आदर्शों का प्रतीक है। भारतीयता एक ऐसी चीज़ है जिसे पहचाना तो जा सकता है, महसूस भी किया जा सकता है, किन्तु उसे शब्दों में परिभाषित नहीं किया जा सकता।

भारतीयता अत्यंत व्यापक है। यह किसी एक धर्म, संप्रदाय, वर्ग या समुदाय पर आधारित नहीं है। भारत एक देश है, अतः यहाँ निवास कर रहे सभी व्यक्ति भारतीय है;

इस कारण यहाँ के निवासियों के धर्म, पंथ, विचारधारा तथा भाषा का समन्वित नाम है, 'भारतीयता'।

'विभिन्नता में एकता' भारत की विशिष्टता है। भारत में विभिन्न, धर्म, जातियाँ, संस्कृति, तरह-तरह की भाषाएँ विद्यमान हैं, परंतु जब एक व्यापक व विस्तृत फलक पर भारत को देखा जाता है, तब ये सभी निजी अस्मिताएँ अपना अस्तित्व खो देती है व केवल एक ही अस्मिता नज़र आती है- 'भारतीयता'।

यह भारतीयता, साहित्यिक, भाषाई एवं सांस्कृतिक स्तर पर स्पष्ट परिलक्षित होती है।

भारतीय मानस को चित्रित करने वाला भारतीय रचनाकार का साहित्य ही 'भारतीय साहित्य' है। जब हम भारतीय साहित्य की अन्तर्धारा को एक कहते हैं, तो यहाँ हमारी दृष्टि एक विचार और एक संवेदना पर होती है, देश-काल और वातावरण पर नहीं। भारतीय साहित्य में भाषा भले ही अलग-अलग प्रयुक्त हुई हो, पर तमाम परिस्थितियों में उसका आत्मा-भाव-संदेश एक-सा ही रहा।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा कि, "विभिन्न भाषाओं में लिखे होने के बावजूद भारतीय साहित्य एक है।"

जब भारतीय साहित्य की प्रवृत्तियों का विवेचन करते हैं, तो अद्वितीय समानता देखने को मिलती है। इसकी एक झलक देखें तो नाथ-सिद्ध साहित्य की परंपरा में चौरासी सिद्धों और नौ नाथों को हिन्दी के प्रारम्भिक कवि माने जाते है। नाथ मुख्यतया शैव थे, यह साहित्य तमिल, उड़ीसा आदि तमाम स्थानों पर उपलब्ध है। नाथ और सिद्ध काव्यधारा का

प्रभाव एक ही समय पूरे भारतीय क्षेत्र में देखने को मिलता है। चारण काव्य की बात करें तो आदिकाल की इसकी परंपरा है। इस धारा का सबसे प्राचीन साहित्य तमिल से ही मिलता है। साथ ही साथ मराठी के पवाड़े और गुजराती में कान्हड़े प्रबन्ध जैसे वीर काव्य-रचनाएँ उपलब्ध हैं ही। संतकाव्य परंपरा के अंतर्गत भी स्वयं कबीर ने दक्षिण के प्रभाव को ग्रहण किया है। तमिल में 18 सिद्ध संत कवि हैं। तेलुगु में वेमन, कन्नड़ के सर्वज्ञ, मराठी के नामदेव, ज्ञानदेव, पंजाब में गुरुनानक आदि अनेक संतों का निर्देश किया जा सकता है। ऐसे ही प्रेमाख्यान परंपरा, वैष्णव काव्य परंपरा, भारतीय लोकनाट्य परंपरा आदि विभिन्न साहित्य धाराओं का साहित्य तमाम भाषा के साहित्य में देखने को मिलता है। आधुनिककाल तक आते-आते अंग्रेज़ी शासन की स्थापना, पुनर्जागरण, स्वतंत्रता संग्राम, समाज सुधार, गांधी विचारधारा, नारी अस्मान, दलित चेतना आदि, सारी बातें भारत में बोली जाने वाली तमाम भाषा के साहित्य में मिलता है।

भारतीय भाषाओं का सामान्य जन्म काल, भारतीय साहित्य के विकास के समान चरण, भारतीय साहित्यों का समान रिक्थ आदि भारतीय साहित्य में व्याप्त भारतीयता का प्रमाण है।

साहित्यकार व चिंतक यू॰ आर॰ अनंतमूर्ति का मानना है कि, "जब हम भारतीय साहित्य की एकता को देखते हैं, तब उसकी विविधता सामने आ जाती है, और जब इसकी विविधता को परखते हैं, तो इसकी एकता दिखाई देती है।"

'यही अनेकता में एकता' हमें भारतीय संस्कृति में भी दृष्टिगोचर होती है। मैत्री, करुणा की शिक्षा हिंदू, जैन और बौद्ध धर्मों में समान रूप से प्रतिष्ठित है। स्वास्तिक चिन्ह और ओंकार मंत्र हिन्दुओं और जैनों में समान रूप से मान्य है। कमल, हाथी और पीपल वृक्ष बौद्धों और हिंदुओं में एक रूप से पूजनीय माने जाते हैं। जैनों के अणुव्रत, हिन्दू के योग-शास्त्र में 'यम' और बौद्धों में पंचशील प्रायः एक ही है। पारसियों और हिन्दुओं में अग्नि की पूजा समान रूप से होती है।

सिख गुरुओं ने हिन्दू-धर्म की रक्षा में योग ही नहीं दिया वरन् उसके लिए कष्ट और अत्याचारों की मार भी सही। उन्होंने विशेषकर गुरु नानक और गुरु गोबिंद सिंह ने, हिंदी में कविता की है। उनके धर्म ग्रंथों में राम नाम की महिमा गाई गई है। 'गुरु ग्रंथ साहिब' में कबीर, आदि महात्माओं की वाणी आदर के साथ सुरक्षित है तथा उनका नित्य पाठ होता है। सिखों के गुरु हमारे संतों में अग्रगण्य समझे जाते हैं। और उनको आदर के साथ स्मरण किया जाता है।'

मुसलमानों और ईसाईयों ने यहाँ की संस्कृति को प्रभावित किया है और वे यहाँ की संस्कृति से प्रभावित हुए। 'दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम दूसरों को अपने प्रति करते देखना चाहते हो'- ईसा मसीह का यह कथन महाभारत के 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' का ही पर्याय है। ईसाइयों की दाया और दया बौद्ध धर्म से

मिलती-जुलती है। भारतीय सूफी कवियों ने वेदान्त की भावभूमि को अपनाया है। और उनके ग्रन्थों में हिंदू-परंपराओं, कथाओं, विचारों, देवी-देवताओं और प्रतीकों के समावेश हुए हैं।

इसी तरह तानसेन और तज पर हिंदु-मुस्लिम समान रूप से गर्व करते हैं। जायसी, रहीम, रसखान, रसलीन आदि अनेक मुस्लिम कवियों ने हिंदी की रसमयता बढ़ाई।

भारतीय संस्कृति व साहित्य के साथ ही भारतीय भाषाएँ व उनके बीच के गहरे संबंध भी भारतीयता के परिचारक हैं। चूँकि भारत बहुभाषी देश, परंतु भाषाओं में अनेकता बाधक होती है। यह विचार अधरी दृष्टि से ही आतंकित करता है। वास्तव में भारतीय संदर्भ में भाषाओं की अनेकता के मूल में एकता के लक्षण विद्यमान हैं।

रामविलास शर्मा का मानना है कि, 'राष्ट्र के निर्माण और विकास से, भाषा परिवारों की भिन्नता का कुछ भी संबंध नहीं है' पूरे राष्ट्र को हिंदी ने एक नाते में बाँधने का कर्म किया, हिंदी का प्रादेशिक स्वरूप नहीं बना, इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय भाषाएँ एक मूल का समूह हैं।

इतनी भाषागत विविधता के बावजूद भी हिंदी एक प्रतिनिधि भाषा बन कर उभरती रही। इसका मूल कारण भारत में बोली जाने वाली बंगला, मराठी, तमिल, कन्नड़, उड़िया जैसी भाषाओं के साथ हिंदी का गहरा संबंध है। हिंदी का प्रथम पत्र 'उदन्त मार्तंड' कलकत्ता से ही निकला। राजा राम मोहन राय ने हिंदी का प्रचार सार्वदेशिक भाषा के रूप

में किया।

उत्तर भारत की सभी भाषाएँ संस्कृत से निकलती हैं। साथ ही दक्षिण भाषाओं की शब्दावली में भी संस्कृत के अनेक शब्द मिलते हैं। देखा जाए तो भाषा की ज़मीन और व्याकरण प्रायः एक सी है। रचनाकारों ने भाषा की सीमाओं को पार कर तरह-तरह के साहित्य विभिन्न भाषाओं में लिखा।

प्रेमचंद, सुदर्शन आदि ने हिंदी के साथ उर्दू में भी रचना की। राम और कृष्ण काव्य ने भारत की लगभग सभी भाषाओं के साहित्य को आप्लावित किया। राष्ट्रीय आंदोलन व स्वतंत्रता आंदोलन की घड़ी में देश के कोने-कोने में जन-भाषा में साहित्य रच कर भारतीय जनमानस में देशीय चेतना जगाई। इन समस्त रचनाओं की यही भाषिक, वैचारिक एवं भावनात्मक सामान्यिकता 'भारतीयता' है और यही राष्ट्रीयता व एकदेशीयता।

भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का इतिहास घुला मिला-सा ही प्रतीत होता है, उनके बीच कोई अभेद्य दीवार नहीं है। मीरा गुजराती व हिन्दी में समान रूप से कवयित्री मानी जाती है। गुजरात में हुए जैन कवियों की भाषा हिंदी थी। साथ ही गुजरात में स्वामीनारायण संप्रदाय और वल्लभ संप्रदाय के कवियों ने भी हिंदी का ही प्रयोग किया। विद्यापति समान रूप से हिंदी, मैथिली और बांग्ला में कवि माने गए। कबीर, दादू, रहीम आदि संतों का भारत वर्ष में व्यापक प्रभाव रहा। तुलसी, सूर की रचनाएँ

ही नहीं 'वंदे मातरम्', 'जन-गण-मन' आदि बंग्ला की रचनाएँ समस्त राष्ट्र व भारत-वासियों की धरोहर हैं।

इस प्रकार आज भी हिंदी सार्वदेशिक साहित्य की प्रतिनिधि भाषा है। उसके साथ मिलकर क्षेत्रीय भाषाएँ विकसित हो रही हैं। जन भाषाओं में ही मूलभूत एकता विद्यमान है।

अतः भाषा-संस्कृति-साहित्य का सम्बंध बताते हुए हम यह कह सकते हैं तीनों ही एक-दूसरे के वाहक हैं व एक-दूसरे के पूरक भी हैं।

निष्कर्षतः भारत का भाषिक-सामाजिक-सांस्कृतिक भूगोल भारतीयता की भावना की ओर ईशारा करता है। वो भारतीयता जो भारत को पूरे विश्व में राष्ट्र के स्तर पर एक विशिष्ट पहचान देती है। 'सर्वधर्म समभाव', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे मूल्य आज भी विश्व भर में भारतीयता के परिचायक हैं। जिस पर हर भारतवासी को गर्व होना चाहिए।

• लूसी कुमारी
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

— • —

गीतांजलि और मानवतावाद

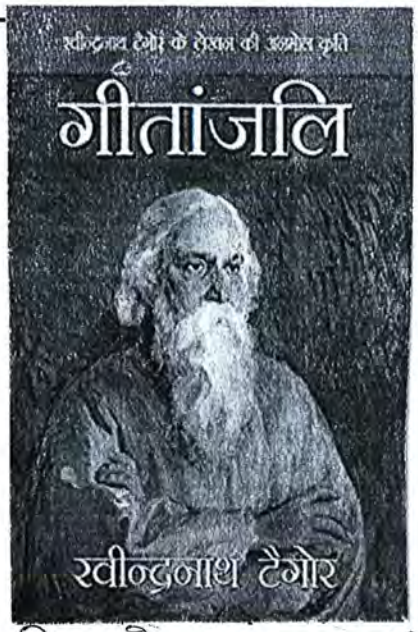

ऐसा कहा जाता है 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि'। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के ऐसे अनेक पक्ष होते हैं जिन पर सोचकर भी हम कुछ लिख नहीं पाते और यदि लिखने का प्रयास भी करते हैं तो हमारी दृष्टि व्यक्ति के व्यक्तित्व पर जाती है न कि उसकी विशेषताओं पर। साहित्य में आदिकाल से मध्यकाल और फिर आधुनिक काल तक साहित्य के केन्द्र में उच्च वर्गीय अथवा उच्च कुलीन व्यक्ति को रखा गया है लेकिन सन् 1910 ई० में बंगला साहित्य को अपनी साहित्य साधना से समृद्ध करने वाले कवि 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' ने अपनी कालजयी कृति 'गीतांजलि' में सामान्य व्यक्ति को स्थान दिया। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का कहना था कि- "जब तक मैं ज़िंदा हूँ मानवता के ऊपर देशभक्ति की जीत नहीं होने दूँगा।"

रवीन्द्रनाथ की कविता में काम करते हुए साधारण जन आते हैं। आम साधारण लोगों की मेहनत को वे अपने साहित्य का विषय बनाते हैं। सामान्य जन्य के मेहनती जीवन को रेखांकित करते हुए गुरुदेव उनके प्रति आदरभाव रखते हैं। आम किसानों तथा मजदूरों को वे साक्षात देवता का रूप मानते हैं। साहित्य में ऐसी प्रतिष्ठा शायद ही पहले कभी आमजन को मिली हो। रवीन्द्र की ऐसी रचनाओं को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने स्वयं उस जीवन को समझा और उसके प्रति सच्ची सहानुभूति प्रकट की। उनके साहित्य में आमजन की इस रूप में विश्वसनीय चित्रों में प्रस्तुति करने के पीछे गुरुदेव का आमजन के पीछे छिपा लगाव ही है। सामान्य जन से सच्ची सहानुभूति के बिना ऐसा लेखन संभव नहीं है। 'धूलि-मंदिर' कविता में वे कहते हैं कि—

देवता तो वहाँ गए हैं,
जहाँ माटी गोड़कर खेतिहर खेती करते हैं-
पत्थर काटकर राह बना रहे हैं,
बारहों महीने खट रहे हैं।

इस प्रकार मानवीय संवेदना की जैसी झांकी रवीन्द्रनाथ टैगोर के काव्य में दिखती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने महज़ आम आदमी को ही काव्य का विषय नहीं बनाया बल्कि उनकी दृष्टि तो समाज के उस उपेक्षित वर्ग की ओर गई जिस पर चाह कर भी अन्य साहित्यकार नहीं सोच पाते। यह सही है कि श्रमिक और मजदूर वर्ग के बिना अन्य लोगों का जीवन भी जीने योग्य नहीं है। अपने वाक्य की पुष्टि मैं इस प्रकार करती हूँ कि- हम सभी को पता है किसी भी व्यक्ति के जीवन निर्वाह के लिए ये तीन वस्तुएँ बहुत उपयोगी हैं- रोटी, कपड़ा और मकान। ये तीनों ही वस्तुएँ मजदूर वर्ग या किसान के अभाव में उपलब्ध ही नहीं हो सकती। अन्न के लिए किसान दिन भर कड़ी धूप में खेती करता है, भरे जाड़े में अपने खेत की रक्षा के लिए बाहर सोता है, लेकिन इतने के बाद भी किसान की स्थिति ही सबसे ज्यादा खराब है। सबका पेट भरने वाला आप भूखा सोता है और उसके लिए सोचने वाला कोई नहीं है। इसलिए गुरुदेव रवीन्द्र ने एक खेतिहर की मेहनत में साक्षात देवता के दर्शन किए हैं। इसी प्रकार यदि हम कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत इकाई की बात करें तो उसमें भी श्रमिक वर्ग की महती भूमिका है। कपड़े की फैक्ट्री में काम करने वाला मजदूर स्वयं पैबंद लगे कपड़े पहनकर अपनी गुजर कर रहा है और तपती धूप और मूसलाधार वर्षा के मौसम में भी अपने काम को ईमानदारी से करने वाला मजदूर जो दूसरों का घर (मकान) बनाता है उसे खुद के लिए छत भी नहीं नसीब हो पाती। ऐसे वर्ग के प्रति गुरुदेव की संवेदना जागी और उन्होंने इस उपेक्षित वर्ग को पूंजीपतियों या मध्यम वर्गीय लोगों की अपेक्षा उच्च स्थान दिया। इसी संदर्भ में स्मृति में कौंधती है हिंदी के समकालीन कवि अरुण कमल की कविता 'धार'।— वह अनाज जो बदल रक्त में
टहल रहा तन के कोने-कोने
वह कमीज जो दाल बनी है
बारिश सरदी लू में

सब उधार का, माँगा चाहा
नमक-तेल, हींग-हल्दी तक
सब कर्जे का
यह शरीर भी उनका बंधक
अपना क्या है इस जीवन में
सब तो लिया उधार।

- जो व्यक्ति और समाज की परस्पर सहभागिता को व्यक्त करती है।

टैगोर ने अपनी कविता 'भारत तीर्थ' में भी मनुष्य की महत्ता को स्वीकारा है साथ ही भारत में विभिन्न धर्म, संप्रदाय तथा जातियों के निवासी मिलने के कारण उसे एक पवित्र तीर्थ की संज्ञा दी है। यह एक बहुत बड़ी विडम्बना ही है कि जहाँ एक ओर मनुष्य-मनुष्य के लिए खड़ा है वहीं समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जिसकी पीड़ा को समझना एक वैभव विलासी या मध्यम वर्गीय व्यक्ति के लिए मुश्किल है। अपना पेट भरने वाले ये लोग भले ही मंदिर में दान-पुण्य का कार्य करें लेकिन यदि इनके साथ रहने वाला व्यक्ति दुःखी है तो इनकी पूजा व्यर्थ है।

लेकिन एक शताब्दी के बाद भी हम यही देखते हैं कि लोग देवता को मंदिरों और मूर्तियों में ही खोजते हैं क्योंकि संवेदनहीनता अब अपने चरम पर पहुँच चुकी है। कवि कबीर ने भी कहा है -

मोके कहाँ ढूंढ़े रे बंदे...
ना तीरथ में, ना मूरत में
ना एकांत निवास में
ना मंदिर में, ना मस्जिद में
ना काबे कैलास में
मैं तो तेरे पास में...।

तो कवि रामनरेश त्रिपाठी भी यही कहते हैं
' मैं ढूँढ़ता तुझे था
जब कुंज और बन में।
तू खोजता मुझे था
तब दीन के सदन में।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की दृष्टि में "जो उपेक्षित है, वही अपेक्षित है।" इसलिए गुरुदेव की कालजयी कृति 'गीतांजलि' बंगला साहित्य में ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य में अपने सोपान पर खड़ी है। सामान्य जन की कर्मठता, ईमानदारी तथा पीड़ा का जैसा उद्भूत चित्रण गुरुदेव ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रकृति, प्रेम, ईश्वर के प्रति निष्ठा और मानवतावादी मूल्यों के प्रति समर्पण भाव से संयत्र 'गीतांजलि' केवल बांग्ला ही नहीं समूचे भारतीय साहित्य की अमूल्य रचना है।

• आकांक्षा सक्सैना
एम॰ ए॰ हिन्दी
(पूर्वार्द्ध)

— • —

काज़ी नज़रुल इस्लाम का विद्रोही स्वर

काज़ी नज़रुल इस्लाम बंगला साहित्य जगत के महाकवियों में से एक हैं। स्वतन्त्रता आंदोलन में उन्होंने अपनी अग्रणी भूमिका निभायी अपनी कविताओं, गीतों तथा संगीत के माध्यम से उन्होंने स्वतन्त्रता आंदोलन को नयी दिशा दी और युवा पीढ़ी को भी प्रोत्साहित किया। उन्हें 'क्रांतिकारी कवि' के रूप में जाना जाता है।

बंगाल साहित्य और संस्कृति की पावन भूमि रही है। यहाँ न केवल नोबेल पुरस्कार प्राप्त महाकवि टैगोर ने अपने काव्य की पताका पूरे विश्व में फहराई, बल्कि काज़ी नज़रुल इस्लाम ने भी अपनी कविता से बंगला साहित्य और संस्कृति को एक नया आयाम दिया। काज़ी नज़रुल इस्लाम 'जन कवि' थे। उन्होंने सामाजिक वैषम्य का विरोध, राष्ट्र को स्वतन्त्र देखने की इच्छा और तमाम मेहनतकश और गरीब जनता को शोषण मुक्त करने की संघर्ष चेतना को अपने काव्य में वाणी दी थी। उनके काव्य का मूल स्वर 'ओज' था। उनके 'विद्रोही स्वर' के निर्माण में उस काल की परिस्थितियों का विशेष योगदान रहा। प्रथम विश्व युद्ध के साथ बंग भंग आंदोलन हुआ, पंजाब में जलियांवाला बाग हत्याकांड हुआ, जिसने समूचे भारतवर्ष की जनता की आत्मा को झकझोर दिया। 1922 में उत्तर प्रदेश के चौरी-चौरा गाँव में हिंसक आंदोलन हुआ। इसी तरह नमक सत्याग्रह

और सविनय अवज्ञा आंदोलन भी शुरु हुए। इन राष्ट्रीय आंदोलनों से देश की जनता में तथा रचनाकारों में अंग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह की ज्वालाएँ धधकने लगी।

नज़रुल इस्लाम पर भी इन राष्ट्रीय आंदोलनों का व्यापक असर हुआ। वे भी पूरी तरह से भारत के स्वतन्त्रता संग्राम आंदोलन में कूद पड़े और अपनी रचनाएँ देश की आजादी की अलख जगाने के लिए समर्पित कर दी। देशबन्धु चितरंजन दास द्वारा चलाए जा रहे एक बंगाली साप्ताहिक 'बंगलार कथा' में उन्होंने उस समय का अमर क्रांतिकारी गीत लिखा। उनकी रचना ने देश की आजादी के लिए संघर्ष कर रहे क्रांतिकारियों में नया जोश भर दिया।

जेल के इस लोहे के द्वार तोड़ दो
उसके टुकड़े-टुकड़े कर दो
पत्थरों को रक्तरंजित कर दो
स्वतन्त्रता की देवी की पूजा
के लिए उठो !!

उन पर रूसी क्रांति का भी प्रभाव पड़ा। वह साम्यवाद की विचारधारा से बेहद प्रभावित थे। उन्होंने साम्राज्यवाद का विरोध किया और साम्प्रदायिक मैत्री पर बल दिया। उनके विद्रोही स्वर की सशक्त अभिव्यक्ति उनके काव्य-संग्रह 'अग्निवीणा' की कविता 'विद्रोही' में मिलती है।

मैं अनियम, उच्छृंखल
कुचल चलूँ मैं नियम, कानून, श्रृंखल
नहीं मानता कोई प्रभुता
मैं अंधड़, मैं बारूदी विस्फोट
शीश बनकर उठा
मैं धुर्जटी शिव
काल वैशाखी का परम अंधड़
विद्रोही मैं

उन्होंने अपने क्रांति गीतों के माध्यम से समाज की पुरानी अवधारणाओं को तोड़ा है। अपने गीतों में लगातार धार्मिक चरम पंथ की आलोचना की है। वे धार्मिक सद्भावना में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे, साथ ही मानवतावाद के प्रवक्ता भी। वे हिन्दू पौराणिक कथाओं के मुरीद थे। उन्होंने पुराण, महाभारत, रामायण आदि से प्रभावित होकर व्यापक अध्ययन किया। उन्होंने माँ काली पर कई गीत लिखे तथा भजन व कीर्तन की रचना भी की।

उनके क्रांतिकारी और आग उगलने वाले भावों ने जनमानस में देश प्रेम की भावना का संचार किया। उनकी कविताओं में विद्रोह और क्रांति का तूफान होता था।

'मैं हर युग में विप्लव के लिए आता हूँ...
... विधि और नियमों को लात मारकर
विधाता के सीने में हथौड़ा गौतम हूँ...
क्रांति लाता हूँ, विद्रोह करता हूँ और
अपनी मूंछों पे हाथ फेरता हूँ,

उनकी कविताओं में तत्कालीन समाज में हो रहे अत्याचार, अन्याय और अमानुषिक यातनाओं की झलक स्पष्ट मिलती है। उनकी रचनाएँ शोषित और उपेक्षित समाज में आशा की किरण जगाने वाली थी। उन्होंने अत्यन्त उग्रता से समाज में समानता के आदर्श की वकालत की। इसकी एक झलक उनकी 'साम्य' कविता में मिलती है, जिसमें उन्होंने घोषणा की—

'गाता हूँ साम्यता का गान
जहाँ आकर एक हो गए सब बाधा-व्यवधान
जहाँ मिल रहे हैं हिन्दू-बौद्ध-मुस्लिम-ईसाई
गाता हूँ साम्यता का गान!

× × ×

तुममें हैं सभी धर्म, सभी युगावतार
तुम्हारा हृदय विश्व-देवालय सभी देवताओं का
क्यूं ढूंढते फिरते हो देवता-ठाकुर मृत पाण्डुलिपि-कंकाल में?
हँसते हैं वो अमृत हिया के निभृत अंतराल में।

उन्हें सामाजिक बदलाव के लिए जनक्रांति पर गहरी आस्था थी। उन्होंने स्त्री-पुरुष सम्मान की समानता के साथ-साथ उनकी समान सहभागिता पर बल दिया जिस पुरुष प्रधान समाज में जबकि स्त्री को सदा पुरुष से कमतर माना गया वहाँ उन्होंने कहा—

दुनिया की बड़ी-बड़ी जीत
बड़े-बड़े अभियान
सबके पीछे है
माता, भगिनी और पत्नी का बलिदान।

नजरुल ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन को समाज के निम्न वर्ग से जोड़ा और नया आयाम प्रस्तुत किया। वह मानते थे कि जब तक इनमें सक्रियता नहीं आएगी, शोषण के खिलाफ तब वह वह आजादी नहीं पा सकते। उन्होंने एक ओर अंग्रेज़ी व्यवस्था के खिलाफ क्रांति करने के लिए प्रेरणा दी तो दूसरी ओर समाज में उपस्थित महाजनी व्यवस्था का भी विरोध किया। उन्होंने कमजोर वर्ग को संगठित करके जनसंघर्ष से समाज में समानता लाने पर बल दिया।

जागो किसान सब कुछ लुट गया है
अब किस बात का डर है
इसी भूख के बल पर सुधा के
जगत को जीतेंगे।

वे मानवतावादी कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में सदा मानव मूल्यों पर बल दिया। उन्होंने सांप्रदायिक सद्भाव कायम करने पर विशेष बल दिया।

आज जबकि धार्मिक सांप्रदायिकता के नाम पर जुल्म और अत्याचार हो रहे हैं, उन्होंने सांप्रदायिकता के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा दी। उन्होंने वर्ष 1920 में 'जुगवाणी' के संपादकीय में लिखा था- " हिन्दू भाईयों आओ, मुस्लिम भाइयों आओ, आओ बुद्धानुयायी व ईसाइयो! आओ हम सब बाधाएँ मिटा दें। आओ हम इसकी खातिर हमेशा के लिए अपनी सभी तुच्छता, सभी झूठ, सभी स्वार्थपरता भूल जाएँ और एक-दूसरे को भाई समझें। अब हम और नहीं लड़ेंगे...।" मुस्लिम कवि होने पर भी उन्होंने कृष्ण भक्तिपरक रचनाएँ भी लिखी।

" कृष्ण कन्हईया आओ मन में मोहन मुरली बजाओ।
कांति अनुपम नील पद्मसम सुंदर रूप दिखाओ।"

तथा

" तुम हो मेरे मन के मोहन मैं हूँ प्रेम अभिलाषी"

उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- अग्निवीणा, साम्यवादी, सर्वहारा, मेघनाद, सुरासाकी आदि। उनका योगदान बंगला साहित्य में अतुलनीय है। कवि गुरु टैगोर ने अपने नाटक 'वंसत' को नज़रुल को समर्पित किया है। बाद में कविगुरु को धन्यवाद सापन करने के लिए नजरुल ने 'आज सृष्टि सुखेर उल्लासे' नामक कविता लिखी।

• शिवि मिश्रा
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

" धरती, पाताल स्वर्ग भेद
ईश्वर का सिंहासन छेद
उठा हूँ मैं
मैं धरती का एकमात्र शाश्वत विस्मय!"

गुरु का महत्व

विश्व के संस्कृत साहित्यरुपी आकाश में महाकवि बाणभट्ट ऐसे चमकते सितारे हैं जिनकी कृति वर्तमान समय में भी जन को ज्योतिर्मय करती है। कादम्बरी और हर्षचरित दोनों गद्यकृतियों में कवि ने अपनी जीवन गाथा को गाकर सुनाया है। महाकवि बाणभट्ट विश्व के गद्यकारों में मर्धन्य हैं। अतएव एक प्राचीन आलोचक की उक्ति है 'कादम्बरीरसज्ञाना - हारोऽपि न रोचते' अर्थात् जिसने एक बार कादम्बरी मदिरा का स्वाद चख लिया। उसे भोजन भी नहीं भाता। वस्तुतः बाण का गद्य भी पद्यमय है। उनके एक - एक शब्द में संगीत है - लय है, लास्य है। **शुकनासोपदेश** महाकवि बाणभट्ट द्वारा रचित कादम्बरी नामक कृति का एक महत्वपूर्ण अंश है इसमें कवि ने शुकनास और युवराज चन्द्रापीड़ के माध्यम से अभिनव - यौवन तथा ऐश्वर्यपद से होने वाले उच्छृखलता, निरंकुशता एवं शास्त्र और लोकमर्यादाओं का उल्लंघन आदि स्वाभाविक दोषों का यथार्थ चित्रण कर वस्तुतः एक सार्वभौम तथ्य का प्रतिपादन किया है। शुकनासोपदेश का अध्ययन करने से इतिहासात्मक महत्त्व का परिचय मिलता है। प्राचीन समय में राजा की वृद्धावस्था आने पर राजव्यवस्था का कार्य ज्येष्ठ-पुत्र को सौंपा जाता था। वर्तमान समय में भी शुभ अवसर पर मंगलाचरण वस्तुओं को एकत्रित करते हैं उसी प्रकार युवराज- पद पर चन्द्रापीड का अभिषेक करने के इच्छुक राजा तारापीड़ ने द्वारपालों को अपेक्षित सामग्री समूह को एकत्र करने के लिए आदेश दिया। राज्याभिषेक से पूर्व प्रधानमंत्री शुकनास चन्द्रापीड़ को उपदेश देते हैं - हे पुत्र चन्द्रापीड़! सभी योग्य विषयों के ज्ञाता एवं समस्त शास्त्रों का अध्ययन किए हुए तुम्हें थोड़ा भी उपदेश देना शेष नहीं है। किन्तु यौवन से उत्पन्न होने वाला मोह व अज्ञानरुपी अन्धकार स्वभाव से ही अत्यन्त गहन होता है, जिसको न तो सूर्य से भेदा जा सकता है, न रत्नों के आलोक से उसका उच्छेद किया जा सकता है और न ही शक्तिशाली दीपक के प्रकाश से उसे दूर किया जा सकता है।

वर्तमान समय में राजनीति से संबंधित शासक और संबंधित क्रियाओं को देखा जाए तो राजनीतिज्ञ राजनीति कार्य को सँभालने के उपायों के उचित तथा अनुचित प्रयोग को नहीं समझते हैं। कहा जा सकता है स्वार्थ के अतिरिक्त कुछ और तत्व नहीं देखते हैं। सभी शास्त्रों के अन्तर्गत नीतिशास्त्र का भी सम्यक् अध्ययन होना चाहिए। किन्तु सब शास्त्रों को पढ़ लेने पर भी यदि व्यक्ति उनके तत्व को भली भाँति समझ न सका हो तो उसे उपदेश की आवश्यकता रहती है। लक्ष्मी का भीषण मद वृद्धावस्था में भी शान्त नहीं होता। अर्थात् यौवन का मद वृद्धावस्था में स्वयं शान्त हो जाता है। सुरापान से उत्पन्न मद भी समय आने पर निवृत्त हो जाता है इसी प्रकार अन्याय मद कालक्रम से स्वयमेव शान्त हो जाते हैं। ऐश्वर्यरूप तिमिररोग द्वारा उत्पन्न अन्धापन अँजन की बत्ती से भी ठीक न होने वाला कष्टकर है अर्थात् तिमिर नामक भयंकर नेत्ररोग भी अँजन शलाका से दूर किया जा सकता है। किन्तु ऐश्वर्य से उत्पन्न होने वाला अविवेकरुपी अंधापन तो किसी भी उपचार से दूर नहीं किया जा सकता। इसी अवस्था में लक्ष्मी का मद भी लोगों में भली-भाँति दिखाई देता है। निकृष्ट कोटि के लोग लक्ष्मी को प्राप्त करने में निकृष्ट से निकृष्ट कोटि का कार्य कर सकते हैं। एकल परिवार को एक उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो लक्ष्मी के मद के कारण अपनी सन्तति को नहीं सँभाल पाते उन्हें अच्छी परवरिश नहीं मिल पाती। अहंकार रूप दावाग्नि की गर्मी शीतोपचार से भी शान्त नहीं होती, बहुत तीक्ष्ण है। विषयरुपी विष के सेवन से उत्पन्न मूर्च्छा निरन्तर जड़ी-बूटी और मंत्रों से भी शान्त नहीं होती। आसक्ति रूपी मल का गाढ़ा लेप नित्य स्नान तथा बुद्धि की क्रियाओं से भी नष्ट नहीं किया जा सकता। राज्यसुख समूह से उत्पन्न निद्रा सदा ऐसी घोर होती है कि रात्रि की समाप्ति पर जागा नहीं जा सकता। तात्पर्य यही है कि यौवन, लक्ष्मी और ऐश्वर्य की तिकड़ी ही कुछ ऐसी है कि अच्छे-अच्छे ज्ञानियों को भी मोहित कर लेती है। जन्मजात प्रभुता, नवयौवन, अद्वितीय सौन्दर्य और अतिमानुषी शक्ति संपन्नता यह सब निश्चय ही अनर्थों की बहुत बड़ी शृंखला है। पर यौवन के प्रारंभ में शास्त्ररूपी जल से धुल जाने के कारण निर्मल बनी हुई भी बुद्धि प्रायः कलुषित

हो जाती है। धवलता को छोड़े बिना भी युवकों की 'दृष्टि सराग' हो जाती है। जिस प्रकार धूलि के बगुले को उठाए हुए वायु का प्रबल झोंका सूखे पत्ते को बहुत दूर ले जाता है, उसी प्रकार युवावस्था में रजोगुण द्वारा उत्पन्न भ्रान्ति वाली प्रकृति भी व्यक्ति के मन में यह उपदेश स्वच्छ स्फटिकमणि में चन्द्रमा की किरणों के समान सरलता से प्रवेश कर जाता है। कान में स्थित स्वच्छ जल के समान सज्जन के कर्णगोचर हुआ स्वच्छ जल के समान गुरु का वचन अत्यन्त थोड़ा उत्पन्न करता है पर गुरु का उपदेश सभी मलिन दोषों को ऐसे हटा देता है जैसे प्रदोषकालीन चन्द्रमा अन्धकार को। अन्तः करण की शान्ति का मूल कारण गुरु का उपदेश उस दोषसमूह को ही गुणों में परिवर्तित कर देता है जैसे वृद्धावस्था केशसमूह को सफेद करती हुई उन्हीं को श्वेत रूप में परिणत कर देती है और विषय रस का आस्वादन न किए हुए तुम्हारे यह समय ही है। क्योंकि कामदेव के बाणों से जर्जर हृदय में उपदेश जल की भाँति बह जाता है।

वस्तुतः गुरु का उपदेश तो मनुष्यों के समस्त मलों को धो डालने में समर्थ जल रहित स्नान है, श्वेतकेशता आदि कुरूपता से रहित और बुढ़ापे से रहित वृद्धत्व है। अर्थात् शास्त्रों में वृद्ध चार प्रकार के माने गए हैं - वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, धर्मवृद्ध तथा तपोवृद्ध। इनमें वयोवृद्ध की अपेक्षा अन्य तीन प्रकार के वृद्ध अधिक पूज्य व प्रतिष्ठित माने गए हैं। लक्ष्मी अमृत की सगी बहन होने पर भी अन्त में कड़वी लगने वाली है। शरीरधारिणी होती हुई भी प्रत्यक्ष न दिखलाई देने वाली है। सर्वोत्तम पुरुष में अनुरक्त भी दुष्टजन की प्रिया है। समुद्रमन्थन के समय अमृत के साथ ही पैदा होने से वह उसकी सगी बहन है। धूलिमयी यह लक्ष्मी स्वच्छ वस्तु को भी कलुषित कर देती है। और जैसे-जैसे यह चंचला प्रदीप्त होती है वैसे-वैसे दीप शिखा की भाँति काजल के समान मलिन कर्मों को ही उगलती है।

इस प्रकार यह रचना केवल राजाओं के लिए ही नहीं, अपितु

युवाओं, विद्वानों और समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए पठनीय और धारणीय ग्रन्थ है।

आज के समय में इस रचना का विशेष महत्व है। जिस प्रकार मंत्री शुकनास ने युवराज चन्द्रापीड़ को युवावस्था के दोषों से अवगत कराया है उसी प्रकार वर्तमान में भी युवाओं को युवावस्था के दोषों के बारे में जानकारी दी जाए तो निश्चित ही उनका मानसिक विकास हो पाएगा। उनमें नैतिकता और जीवन मूल्यों का संचार भली-भाँति होगा। शुकनास की भाँति श्रेष्ठ गुरुओं की आज भी आवश्यकता है जो अपने विद्यार्थियों का मार्गदर्शन कर उन्हें भविष्य की राह पर सफल संदेश दे सकें जिससे एक आदर्श समाज और राष्ट्र की रचना सम्भव हो।

— • —

• सुनीता मीना
(संस्कृत विशेष
द्वितीय वर्ष)

राष्ट्रीयता और भारतीय भाषाएँ

भारतवर्ष अतीव प्राचीन राष्ट्र है। इसकी राष्ट्रीयता का मूल स्वरूप सांस्कृतिक है। अनेक राजनीतिक परिवर्तनों के होने के बाद भी भारत की राष्ट्रीयता अविच्छिन्न रूप से आज तक चली आ रही है। न कोई आँधी उस कल्पतरु को हिला सकी है, न कोई बवंडर उस मणि की चमक को मिटा सका है।

उर्दू कवि 'इकबाल' ने 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी' कहकर जिस अमिटता की ओर संकेत किया है, वह हमारी राष्ट्रीयता ही है। हमारी राष्ट्रीय पहचान हमारी सभ्यता, संस्कृति और जीवन-दर्शन में है। राष्ट्रीयता की अविच्छिन्न धारा का प्रमाण भारतीय साहित्य में मिलता है।

'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग भारत के प्राचीनतम वाङ्मय वेद से ही देखने को मिलता है। 'ऋग्वेदसंहिता' में राष्ट्रं क्षत्रियस्य, राजा राष्ट्रानाम आदि संदर्भों से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय के द्वारा शासित भूभाग को राष्ट्र कहते थे। यजुर्वेद के एक मंत्र में राष्ट्र में न केवल सब प्रकार के लोगों की, अपितु पशु और वनस्पति की भी पुष्टि की कामना की गई है, जिससे राष्ट्र के व्यापक रूप का आभास मिलता है।

भूमि, भूमि पर बसने वाला जन और जन की संस्कृति, इन तीनों के सम्मेलन को राष्ट्र का स्वरूप बनता है।

'वसुधैव कुटुंबकम्' भारतवर्ष की मनीषा का मूलमन्त्र है। माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः सदृश वेदवचनों और 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' समान सुभाषितों से प्राचीन

भारतीयों की राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रीय भावना सुव्यक्त होती है। तत्पश्चात् भाषाओं तथा उनके साहित्य के विकास के साथ-साथ राष्ट्रीयता का भी उत्तरोत्तर विकास होता गया।

इतिहास को खंगालने पर हम यह जान सकते हैं कि भारत की राष्ट्रीयता नवजागरण के साथ आगे बढ़ती है। अतः 'धर्म' को केन्द्र में रखकर भारत को एकसूत्र में पिरोने का प्रयत्न बुद्ध ने किया। तथा ईसा पूर्व द्वितीय-तृतीय शताब्दी के बीच लिखे अर्थशास्त्र और चाणक्य नीति को भी एक 'राष्ट्र' तथा उसके संचालन हेतु ग्रंथ माना जा सकता है।

1325 ई० के बाद दक्षिण से लेकर उत्तर तक 'भक्ति' का प्रसार विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा तत्कालीन कवियों द्वारा हुआ। बाद में यह पूर्व तथा सुदूर पश्चिम तक पहुँचकर समस्त भारतवर्ष को 'एकसूत्र' में पिरोने का माध्यम बनी। यद्यपि यह एक सफ़ल राष्ट्रीय आंदोलन कहा जा सकता था किंतु इस समय भी केंद्र में व्यक्ति नहीं धर्म था, मानसिकता 'इहलौकिक' नहीं 'पारलौकिक' थी, जो अपना वर्चस्व स्थापित करती है 1857 की क्रांति के बाद।

एक संपूर्ण 'राष्ट्र' का साकार रूप तथा उसका पूर्ण विकास स्वतंत्रता संग्राम के समय में होता है जब विभिन्न भारतीय भाषाएँ राष्ट्रभक्ति की रचनाएँ कर साहित्य तथा समाज को नई मशाल देते हैं। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय कृत आनन्दमठ का संस्कृत-बांग्ला मिश्रित गीत वन्दे मातरम् समस्त भारतवर्ष का स्वतंत्रता गीत बनकर उभरता है। तो अल्लामा इकबाल का सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्ताँ हमारा! उर्दू की रवानगी लेकर भारत के स्वाभिमान को बयाँ करता है। तो कहीं भक्तिकाल से ही प्रेरणा ग्रहण गुजराती कवि नरसी मेहता कृत वैष्णव जणतो

तेने कहिये जे, पीड़ पराई जाणे रे ! द्वारा 'आस्मि से वयं' की यात्रा राष्ट्रीयता को और मज़बूत करती है। जहाँ एक ओर बंगाली गीत एकला चलो रे वैयक्तिकता को राष्ट्रीयता की अहम कड़ी रखकर पेश करता है तो गिरिजाकुमार माथुर का 'हम होंगे कामयाब' [नागरिक अधिकार आंदोलन के समय लिखा गया गीत] सामूहिकता तथा एकता का बल प्रस्तुत करता है।

भारतीय साहित्य में 1857 के पश्चात् पुनर्जागरण की प्रक्रिया समस्त भारतीय भाषाओं में मिलती है। यदि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी पुनर्जागरण का श्रीगणेश किया तो बंगाल में राजा राममोहन राय, तमिल में रामलिंग स्वामीगल, तेलुगु में वीरेश-लिंगम् ने इस आंदोलन को बल दिया। मराठी क्षेत्र में लोकमान्य तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, रानाडे, बाल शास्त्री आदि प्रारंभ से ही पुनर्जागरण के पुरस्कर्ता थे जिनका प्रभाव साहित्य पर पड़ा। गुजराती में भारतेन्दु के समकालीन नर्मद ने पुनर्जागरण का सूत्रपात किया। बंगला में राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, ईश्वर गुप्त, मधुसूदन दत्त, बंकिमचन्द्र प्रभृति नेताओं और साहित्यकारों ने उसी काल में पुनर्जागरण आंदोलन को विस्तार दिया। इस प्रकार पुनर्जागरण की चेतना समस्त आधुनिक भारतीय साहित्य में उपलब्ध है।

भारतीय साहित्य की आधुनिक युग की महत्वपूर्ण विशेषता है, समस्त भाषाओं में राष्ट्रीय चेतना और स्वतंत्रता का समान रूप से विकास। हिंदी में जब राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत साहित्य लिखा जा रहा था, तभी समस्त भारतीय भाषाओं में राष्ट्रीय आंदोलन की भावना सजग थी। तमिल कवि सुब्रह्मण्यम भारती ने भारत की स्वतंत्रता ही नहीं व्यक्ति की

स्वतंत्रता का भी समर्थन किया। उनके अतिरिक्त तमिल के चिदम्बरम् पिल्लई वी. वी. एस अय्यर राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि रहे हैं। कन्नड़ में श्रीकंठैया, गोविंद शंकर भट्ट, मलयालम में केरल वर्मा, वेनमणि, राजराज वर्मा राष्ट्रीय चेतना के साहित्यकार थे। केरल में राष्ट्रीय कवि के रूप में ख्यात वल्लतोल इस दृष्टि से भारतीय राष्ट्रीय काव्य के प्रतिनिधि कवि हैं। मराठी में केशव सुत, कुंते, कुसुमाग्रज और सावरकर प्रमुख राष्ट्रीय कवि हैं। गुजरात महात्मा गाँधी की जन्मभूमि है। वहाँ का जन-जन राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित था। गाँधीजी के अतिरिक्त नान्हालाल, ठाकोर, काका कालेलकर, आनंद शंकर ध्रुव, उमाशंकर, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी राष्ट्रीय साहित्य के उन्नायक हैं। इसी प्रकार बंगला में रवीन्द्रनाथ टैगोर, असमी में आनन्दराय फूंकन, कमलाकान्त भट्टाचार्य, हैमचन्द्र बरुआ, चन्द्रकुमार अग्रवाल, लक्ष्मीनाथ बेज बरुआ, हैमचन्द्र गोस्वामी राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उड़िया में फ़कीर मोहन सेनापति, राधानाथ और मधुसूदन ने राष्ट्रीय भावना को विकसित किया। उत्तर भारत में हिंदी में पुनर्जागरण भारतेंदु युग से हुआ। उस काल में हिंदी - उर्दू गद्य का विकास सामान्तर रूप से हो रहा था। उर्दू शायर इकबाल राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत थे तो पंजाबी में गुरुमुख सिंह मुसाफिर, हीरा सिंह दर्द का नाम राष्ट्रीय कवियों में अग्रगण्य हैं।

हिंदी उर्दू के लेखकों ने कभी हिन्दू - मुसलमान नहीं किया - विभाजन के समय और उसके बाद भी। अज्ञेय, यशपाल, भीष्म साहनी, राही मासूम रज़ा, मंटो, फ़ैज, इंतज़ार हुसैन आदि सदा अपनी कलम के साथ सांप्रदायिकता के खिलाफ़ राष्ट्र की एक जुटता हेतु खड़े रहे।

भारतीय साहित्य की यह शानदार परंपरा है।
उल्लेखनीय है कि वे कवि, स्वतंत्रता सेनानी तथा समाजसुधार, चिंतक जिनकी मातृभाषा 'हिन्दी' नहीं थी, भारतीय राष्ट्रीयता की गति बढ़ाने के लिए साहित्य, समाज तथा देश को हिंदी का प्रयोग राष्ट्रभाषा के रूप में करने का आह्वान करते हैं। इनमें महात्मा गाँधी, दयानंद सरस्वती, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, मदन मोहन मालवीय आदि प्रमुख हैं।
निस्संदेह स्वतंत्रता आंदोलन के समय प्रायः सभी विधाओं में हिन्दी में 'राष्ट्रीयता' को लेकर रचनाएँ हुईं।
भारतेंदु हरिश्चन्द्र कृत 'भारतदुर्दशा', 'अँधेर नगरी' तथा 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है' उनकी राष्ट्रव्यापी राष्ट्रीय कृति हैं जो भारत को भारतीयता के मानदण्ड पर फिर से खरा उतरने का आह्वान देती हैं—

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई।

एक ओर भारतीय जनता की कमियाँ दिखाकर उन्हें जागृत होने का संदेश दिया गया तो दूसरी ओर खिन्न तथा दुःख से क्लांत भारतीयों को उनके प्राचीन गौरव का नवोन्मेष करवाया गया।

नीलांबर परिधान हरित तट पर सुंदर है,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।...
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।।

यह वह देश है जहाँ 'अतिथि देवो भवः' की संस्कृति आज भी विद्यमान है—तभी तो सिल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया यह गीत गुनगुनाती है।

अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।।

'हिंदी हैं हम वतन हैं हिंदोस्ताँ हमारा' में हिन्दी व हिन्दोस्ताँ एक इकाई न होकर समुच्चय हैं। इस राष्ट्रीय आंदोलन ने भाषा, क्षेत्र, धर्म, संप्रदाय, वर्ग की दीवारें ढहा दीं और राष्ट्रीय चेतना का एक लंबा और संघर्षपूर्ण इतिहास रचा।

इस राष्ट्रीय आंदोलन ने देश की स्वतंत्रता के साथ-साथ जन-जन की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना का प्रसार किया। विस्तृत और व्यापक अर्थ में राष्ट्रीय चेतना भारत के भौगोलिक क्षेत्रों की सीमाओं को लांघते हुए संपूर्ण भारतीय साहित्य में प्रतिफलित होती हुई दिखाई देती है।

हमारी राष्ट्रीयता को चुनौती देने के निमित्त से उत्तर-दक्षिण, अवर्ण-सवर्ण, हिन्दू-मुस्लिम तथा भाषायी भेद खड़े करके हमारी संगठित इकाई को क्षति पहुँचाने के प्रयास किए गए तथा भारतीय एकता को खंडित करने का प्रयत्न किया गया किंतु इन सब के बावजूद भारत की राष्ट्रीयता की धारा अबाध रूप से प्रवाहमान है।

अंततः निस्संदेह राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र एक 'आधुनिक अवधारणा' हैं किंतु भारतीय मनीषा में यह किसी न किसी रूप में [भारतीय भाषा] विद्यमान रही है जिसका कालांतर में उत्तरोत्तर विकास होता गया !

— • —

• प्रियल जैन
(हिंदी विशेष
तृतीय वर्ष)

चाह

हाँ आज कुछ करने की चाह फिर जगी है,
चाह जो अंजान है, अँधेरों के खौफ़ से,
चाह जो ख्वाब है, मगर हकीकत से कुछ दूर है,
चाह जिसके लिए काँटों और अंगारों पर चलना मंज़ूर है,
न है कोई गरजता बादल यह, है यह तो बरसने को तैयार मगर ये मजबूर है।

मजबूरी से मजबूती तक, निशानी से आशा तक,
तलब से तृप्ति तक और हार से जीत तक का रास्ता है यह चाह।

चाह रोटी नहीं, कपड़ा नहीं, न है कोई मृगतृष्णा,
चाह तो है अपनी सोई हुई किस्मत को घिसना,
चाह अलगाव है, त्याग है कर्मठता का गहना है,
चाह विपरीत परिस्थितियों में भी हँसकर रहना है।

चाह बीते कल से निकली, आने वाले कल की कहानी है,
चाह प्यार का समंदर है, आँखों का पानी है,
चाह सफ़लता की असली निशानी है,
बस यही चाह अपने मन में जगानी है॥

— • —

• प्रिन्सी पाराशर
(बी० ए० प्रोग्राम
प्रथम वर्ष)

मलयालम साहित्य की दादी

हर कहीं
लाएं सूर्य प्रकाश
हर कहीं
लगाएं बगीचे
दोनों मार्गों पर -
बढ़ते वक्त
बधाई
मदद देने वाले... ।

बालापत बालमणि अम्मा मलयालम भाषा की प्रतिभावान कवयित्रियों में से एक हैं। वह हिंदी कवयित्री महादेवी वर्मा की समकालीन थी। उनकी गणना 20 वी शताब्दी की चर्चित एवं प्रतिष्ठित रचनाकारों में की जाती है। वह मुख्यतः वात्सल्य, ममता, मानवता के कोमल भावों की कवयित्री के रूप में जानी जाती है। आध्यात्मिकता व दार्शनिकता उनकी कविताओं की अन्यतम विशेषता है। वर्ष 1929-39 के बीच लिखी गयी उनकी कविताओं में देशभक्ति, गाँधी का प्रभाव तथा स्वतन्त्रता की चाह भी स्पष्टतः दिखती है। उनकी पहली कविता 'मातृचुंबन' मानी जाती है। उन्होंने स्त्री जनित अनुभवों (गर्भधारण और प्रसव आदि) को भी अपनी कविताओं में दर्शाया। अपनी प्रथम प्रकाशित और चर्चित कविता 'कलकत्ते का काला कुटिया' उन्होंने अपने पति के अनुरोध पर लिखी थी। उनकी प्रारंभिक कविताओं में से एक 'गौरैया' शीर्षक कविता उस दौर में अत्यन्त लोकप्रिय हुई। उन्होंने 500 से अधिक कविताएँ लिखी।

वर्ष 1987 में प्रकाशित 'निवेद्यम्' उनकी

कविताओं का चर्चित संग्रह है। कवि एन. मेनन की मृत्यु पर शोकगीत के रूप में उनका काव्य संग्रह 'लोकांतरागलील' नाम से प्रकाशित हुआ। उन्हें 'मलयालम साहित्य की दादी' अलंकरण से पुकारा जाता है। उन्होंने मलयालम कविता में इस कोमल शब्दावली का विकास किया जो अभी तक केवल संस्कृत में ही संभव मानी जाती थी। इसके लिए उन्होंने अपने समय के अनुकूल संस्कृत के कोमल शब्दों को चुनकर मलयालम का जामा पहनाया।

देश के मौजूदा हालात पर अपनी आत्मकथात्मक टिप्पणी में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि —

— "कश्मीर भारत का हिस्सा है या पाकिस्तान का, इस बात पर एक विवाद छिड़ा था... भारत में विभिन्न देशों के लोग आए और यहाँ बस गए। इस देश में संस्कृतियों का समन्वय है। ऐसे देश में एक टुकड़ा जमीन के लिए क्यों इतना रक्तपात हो रहा है? क्यों इतनी मृत्यु की घटनाएँ हो रही हैं? भूमि अधिक महत्वपूर्ण है या मानव जीवन?..."

— कितना प्रासंगिक है यह कथन! जो तत्कालीन बिगड़ते माहौल में हमें सोचने-विचारने को एक बारगी पुनः विवश करता है।

उनकी बहुचर्चित मार्मिक कविता

"माँ भी कुछ नहीं जानती" है

माँ भी कुछ नहीं जानती

'बतलाओ माँ
मुझे बतलाओ,
कहाँ से, आ पहुँची यह
छोटी-सी बच्ची?'
अपनी अनुजाता को
परसते-सहलाते हुए
मेरा पुत्र पूछ रहा था
मुझसे
यह पुराना सवाल,
जिसे हजारों लोगों ने
पहले भी बार-बार पूछा है।

प्रश्न जब उन पल्लव-अधरों
से फूट पड़ा
तो उससे नवीन मकरन्द की कणिकाएँ चू पड़ीं;
आह, जिज्ञासा
जब पहली बार आत्मा से फूटती है
तब कितनी आस्वाद्य बन जाती है
तेरी मधुरिमा!
कहाँ से? कहाँ से?
मेरा अन्तःकरण भी
रटने लगा यह आदिम मन्त्र।
समस्त वस्तुओं में
मैं उसी की प्रतिध्वनि सुनने लगी
अपने अन्तरंग के कानों से,
हे प्रत्युत्तरहीन महाप्रश्न!
बुद्धिवादी मनुष्य की

उद्भूत आत्मा में
जिसने तुझे उत्कीर्ण कर दिया है
उस दिव्य कल्पना की जय हो !
अथवा
तुम्हीं हो
वह स्वर्णिम कीर्ति-पताका
जो जता रही है सृष्टि में मानव की महत्ता।
ध्वनित हो रहे हो
तुम
समस्त चराचरों के भीतर
शायद,
आत्मशोध की प्रेरणा देने वाले
तुम्हारे आमंत्रण को सुनकर
गायें देख रही हैं
अपनी परछाई को झुककर।
फैली हुई फुनगियों में
अपनी चोंचों से
अपने आप को टटोल रही हैं, चिड़ियाँ।
खोज रहा है अश्वत्थ
अपनी दीर्घ जटाओं को फैलाकर
मिट्टी में छिपे मूल बीज को;
और, सदियों से
अपने ही शरीर का
विश्लेषण कर रहा है
पहाड़।
ओ मेरी कल्पने,
व्यर्थ ही तू प्रयत्न कर रही है
ऊँचे अलौकिक तत्वों को छूने के लिये।

कहाँ तक ऊँची उड़ सकेगी यह पतंग
मेरे मस्तिष्क की पकड़ में ?
झुक जाओ मेरे सिर,
सुनने के जिज्ञासा भरे प्रश्न के सामने !
गिर जाओ, हे ग्रंथ-विज्ञान
मेरे सिर पर के निरर्थक-भार-से
तुम इस मिट्टी पर।
तुम्हारे पास स्तन्य की एक कणिका भी नहीं
बच्चे की बढ़ी हुई सत्य-तृष्णा को-
बुझाने के लिए।
इस नन्हीं सी बुद्धि को थामने-संभालने
के लिए
कोई शक्तिशाली आधार भी तुम्हारे पास नहीं!
हो सकता है,
मानव की चिन्ता पृथ्वी से टकराये
और सिद्धान्त की चिनगारियाँ बिखेर दे।
पर अँधकार में है
उस विराट सत्य की सार-सत्ता
आज भी यथावत।
चिड़ियाँ भागी जा रही थीं
सौ-सौ चिन्ताओं को कुचलकर;
विस्मयकारी वेग के साथ उड़-उड़कर छिप रही
हमारे समुद्र की बदलती हुई भावनाएँ
अत्यन्त आकार के साथ,
अन्तरिक्ष के पथ पर।
मेरे बेटे ने प्रश्न दुहराया,

माता के मौन पर अधीर होकर।
" मेरे लाल,
मेरी बुद्धि की आशंका अभी तक ठिठक
रही है
इस विराट प्रश्न में डुबकी लगाने के लिये,
और जिस को
तल-स्पर्शी आँखों ने भी नहीं देखा है,
उस वस्तु को टटोलने के लिए।
हम सब कहाँ से आये?-
मैं कुछ भी नहीं जानती!
तुम्हारे इन नन्हें हाथों से ही
नापा जा सकता है
तुम्हारी माँ का तत्व-बोध।"
अपने छोटे से प्रश्न का
जब कोई सीधा प्रत्युत्तर नहीं मिल सका
तो मुन्ना मुसकुराता हुआ बोल उठा
" माँ भी कुछ नहीं जानती।"

• शिवानी
(हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष)

— • —

वाल्मीकि : राम काव्य का जन्म

भारतीय जनमानस की यदि परत-दर-परत उघाड़ा जाए तो हम पाएँगे कि बहुत गहरे वह प्रकृति से जुड़ा हुआ है। भारतीय मनीषा और दर्शन दोनों ही परदुखकातरता और करुणा की नींव पर खड़े हुए हैं। सबको सम मानने वाले 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की घोषणा करने वाले 'भूमा-दर्शन' पर टिकी भारतीय भवभूमि समस्त संसार को मानवता का संदेश देती है। यह भूमा का भाव जो सबमें ऐक्य का भाव स्थापित करता है, जो न केवल मनुष्य को मनुष्य से, बल्कि मनुष्य को प्रकृति से, सृष्टि से एकाकार करता है, ही वह उपजाऊ भूमि है जहाँ से आदिकाल 'रामायण' का उत्स हुआ है।

वाल्मीकि का ऋषि मन उस पवित्र नूर से प्रकाशमान है, जिसके अपनापे के पसारे से समस्त धरा आ जाती है :-

"याद आती सन्त मन की
विगत कल्मष शांति!"

वाल्मीकि के ऋषि मन में किस कदर करुणा पगी है, इसका अंदाजा इसी बात से लग जाता है कि संयतेन्द्रिय (अपनी इंद्रियों पर वश रखने वाले) महर्षि, तपस्वी क्रौंच के आहत होने पर क्रौंची की शोकाकुलता से विह्वल होकर बाण

व्याध को शाप दे देते हैं :-

"वह चली वाणी सहज
ले द्रवित उर का मर्म।"

क्रौंची का वियोग देखकर शोकार्त वाल्मीकि के कंठ से जो श्लोक फूटा, वही आदिकाव्य 'रामायण' का प्रेरणा बिंदु बना :-

"पाद-बद्ध, समान अक्षर
तन्त्र-गेय समर्थ,
श्लोक यह शोकार्त उर का
हो न सकता व्यर्थ!"

इसी से इल्म हो जाता है कि प्राचीन भारत के मनीषी, ऋषि कितने ज्ञानी थे। शोकाकुल कंठ से अनुलाहर फूटी भी, तो छन्दबद्ध श्लोक रूप लेकर।

करुण कंठ के विलाप से एक महाकाव्य की रचना हो गई, यह इस बात की पुष्टि करता है, कि भारतीय मनीषा में करुणा को कितना महत्त्व मिलता है :-

"ताम्रवर्णी शीशवाला
सेहमत प्रसन्न,
उसी पति से रहित क्रौंची
हुई दीन विपन्न!"

अपने साथी के वियोग से टूटी-बिखरी क्रौंची के करुण रुदन को देखकर वाल्मीकि की स्मृति में राम-सीता का वियोग अनायास ही कौंध जाता है और वह 'रामायण' की रचना करते हैं। 'रामायण' में वाल्मीकि ने राम का चित्रण ईश्वर के नहीं, मनुष्य के रूप में किया है। उनके राम साधारण मनुष्य की तरह गलतियाँ भी करते हैं और विलाप भी।

जिस तरह व्याध क्रौंच-क्रौंची युग्म को तोड़ता है, उसी तरह समाज अपने कठिन शरों से राम और सीता को विलग्न देता है। वाल्मीकि ने नारी के स्वाभिमान को बहुत महत्व दिया है। उनकी सीता दोबारा राम के पास नहीं जाती। इसके अलावा वह अपने पति का नाम भी लेती है :-

" त्वया च सह गन्तव्यं मया गुरुजनाज्ञया
त्वद्वियोगेन मे राम! त्यक्तव्यमिह जीवितम् ।"

रामकाव्य के उत्स पर विचार करते समय वाल्मीकि का भूमा-दर्शन खुलकर सामने आता है, जो प्राणी मात्र के प्रति करुणा का भाव रखता है, जो मनुष्य को प्रकृति के बहुत करीब ले आता है, उसे उदात्त बनाता है। भूमा का यह दर्शन बाद में कालिदास और टैगोर में भी नज़र आता है। यह विश्वव्यापी भूमा-दर्शन जो स्वयं को रिक्त कर भी दूसरों को देने का भाव रखता है, जो विश्वकल्याण चाहता है, भारतीय चिंतन और दर्शन की वह विशेषता है जो संसार में अन्यत्र दुर्लभ है। निस्संदेह संपूर्ण विश्व में प्राचीन काल में अद्भुत काव्य लिखे गए, मगर भूमा का यह उदार भाव कहीं नहीं मिलता जो कहता है :-

" सर्वे भवन्तु सुखिन:
सर्वे भवन्तु निरामया।"

प्राचीन भारत में श्रुति और स्मार्त परम्परा का निर्वाह होता था :-

" मुनि वचन सुन शिष्य ने
उसको किया कंठस्थ।"

भारतीय संस्कृति में गुरु को बहुत महत्व दिया गया है। गुरु की महत्ता वाल्मीकि, खुसरो, कबीर, तुलसी आदि कवियों की रचनाओं में मिलता है।

शोकाकुल क्रौंची को देखकर वाल्मीकि के आर्त कंठ से उपजी रामायण के संदर्भ में पन्त की यह पंक्ति सटीक बैठती है:-

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान,
निकल कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।"

वेदना, प्रकृति और प्रेम का जो समन्वय वाल्मीकि में मिलता है। वही आगे चलकर कालिदास और जयशंकर प्रसाद में भी खुलकर अभिव्यक्ति पाता है। कालिदास के 'मेघदूत' और 'रघुवंश' तथा प्रसाद के 'आँसू' और 'झरना' इस घुलन के जीवंत दस्तावेज हैं।

सृष्टि के कण-कण से तादात्म्य स्थापित करने वाली, दूसरों के दुःख से दुःखी होने वाली, प्राणी मात्र के प्रति सहृदय भूमा-दृष्टि भारतीय चित्तवृत्ति को, भारतीय मनीषा को, इस लोकमानस को विश्व में एक विशेष पहचान देती है। साथ ही वह समस्त मानवता के लिए सन्मार्ग प्रशस्त करती है। यह विरल भूमा-दर्शन भारतीय वाङ्मयकी नींव है और इसी से फूटी राम-कथा भारतीय संस्कृति पर अपनी छाप छोड़ते हुए साहित्य के नए कीर्तिमान रचती है।

— • —

• अपूर्वा
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

तुम्हारा गर्म हाथ

कहीं तो होगे तुम
इन उदास मौसमों से लड़ते
सर्द हाथों में गर्म-चाय का
प्याला लिए,
इन मौसमों को कोसते,
कहीं तो होगे तुम।

सोचती हूँ...
जब मिलोगे,
कैसा होगा ये मौसम,
आएगा तूफान या
बरसेंगे फूल
जैसा भी होगा, ले तुम्हारा हाथ,
चल पड़ेंगे साथी
इन उदास मौसमों के खिलाफ

• आदिति
(हिंदी विशेष, प्रथम वर्ष)

— • —

स्त्री अस्मिता का प्रश्न

हमारी भारतीय संस्कृति में ईश्वर के अर्धनारीश्वर रूप की पूजा-अर्चना की जाती है। यहाँ के गाँवों में देवी माँ को आराध्य माना जाता है। वास्तव में, भारतीय इतिहास में आदिकाल से ही नारी का गरिमामय एवं अपरिहार्य योगदान रहा है। मानव-जगत का प्रायः आधा भाग नारी का है। वैदिक समाज में नारी को एक सम्मानीय दर्जा प्राप्त था। इस काल में विधवा-विवाह का प्रचलन था, नारी को स्वेच्छा से अपना वर चुनने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी, सती होना अनिवार्य नहीं था तथा कन्या अपने माता-पिता को पुत्र के समान ही प्रिय थी। फिर आखिरकार, ऐसा क्या हुआ कि कालक्रम में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने लगी??

कृषि का विकास सभ्यता का पहला सोपान था। इसके उपरांत नारी की पराधीनता का प्रारम्भ हुआ। नारी घर में तथा पुरुष बाहर रहने लगा। वस्तुतः इसके पीछे समाज की यह धारणा बलवती हुई होगी कि-पुरुष की सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसके पुत्र को ही मिले। इस भावना ने-स्त्रियों को चारदीवारी के अन्दर सीमित करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार जिन्दगी दो टुकड़ों में बँट गई। शनैः-शनैः उत्तर-वैदिक ग्रंथों में स्त्री-उपेक्षा के प्रमाण भी मिलने लगते हैं। उत्तर-वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा, सम्पत्ति आदि अधिकारों से वंचित किया जाने लगा। मनु-स्मृति, नारद-संहिता आदि में स्त्री चरित्र का नकारात्मक वर्णन मिलता है। इसमें उन्हें नरक के द्वार, सभी पापों की जड़ तथा त्रिया-चरित्र जैसे अनेक विशेषणों से संबोधित किया गया है। गुप्तकाल तक आते-आते नारी स्थिति में और-ह्रास हुआ। इसके फलस्वरूप इनमें अज्ञानता, अशिक्षा तथा अंधविश्वास आदि का विस्तार हुआ।

नारी स्थिति में ह्रास होने की प्रक्रिया का और अधिक विस्तार मध्यकाल में हुआ। इस युग तक आते-आते नारी का अस्तित्व केवल संभोग के साधन तक ही सिमट कर रह गया तथा नारी सती-प्रथा, जौहर, पर्दा-प्रथा बहुपत्नी-विवाह आदि जैसी कुप्रथाओं का केन्द्र बन गई। भारतीय इतिहास में यह नारी की स्थिति का सबसे काला-अध्याय है।

आधुनिक काल में भारतीय समाज समानता, स्वतन्त्रता तथा न्याय जैसे विविध-मूल्यों से अवगत हुआ जिसके फलस्वरूप सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों का उद्देश्य भारतीय समाज की मानसिक जड़ता को समाप्त कर धार्मिक तथा सामाजिक कुप्रथाओं का उन्मूलन करना था। स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान नेताओं ने भी यह महसूस किया कि नारी सहभागिता के बगैर आन्दोलन को सफल बनाना एक दुष्कर कार्य है। इस प्रकार, नारी की राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हर्ष की गई।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद नारी की स्थिति में सुधार के लिए बहुआयामी प्रयास किए गए। इसके अन्तर्गत, संवैधानिक प्रावधान, सामाजिक विधान व कल्याणकारी योजनाएँ शामिल हैं।

उपर्युक्त तर्कों को देखने के उपरान्त मेरे अन्तरात्मा में विविध सवाल उत्पन्न हो रहे हैं — क्या ये बहुआयामी प्रयास स्त्रियों और पुरुषों के मध्य समान अधिकारों की स्थापना कर पाए हैं....?? क्या यह समाज आज मुझे उन्हीं नजरों से देखता है जिन नजरों से वह एक पुरुष को देखता है? संक्षेप में इतने सारे प्रयासों के बावजूद भी आज स्त्री व्यवहारिक रूप में बराबरी का दर्जा हासिल नहीं कर पाई है। भ्रूण-हत्या, घरेलू-हिंसा, यौन-उत्पीड़न, बलात्कार, आदि जैसे घृणित अपराध आज भी समाज में व्यापक रूप से हो रहे हैं। आज के इस आधुनिक समाज में भी ऐसे पुराणपंथी तथा रूढ़िवादी विचारधारा वाले लोगों का एक बड़ा वर्ग है, जिन्हें स्त्रियाँ केवल चारदीवारी के भीतर अच्छी लगती है.... मानो वह घर की चारदीवारी के भीतर रखी सजावट की एक गुलदान है। आज यदि समाज में कोई प्रेमी-युगल प्रेम-विवाह करता है तो स्त्री को ही चरित्रहीन करार दिया जाता है, यदि कोई कुँआड़ी लड़की गर्भवती होती है तो उसे उसके स्वजन तथा समाज द्वारा विभिन्न यातनाएँ दी जाती है।

यहाँ तक कि उसके बच्चे को 'नाजायज औलाद' की संज्ञा दे दी है। क्या स्त्री को यौन-स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है...?? एक हद तक इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में ही आता है।

उपर्युक्त स्थितियाँ मन में एक अजीब झनझनाहट पैदा करती है। मन व्यथित हो रहा है। ठीक वैसे ही जैसे कोई वृद्ध या असहाय व्यक्ति अपने आस-पास होनेवाली विविध प्रकार की अप्रिय घटनाओं को देखने के उपरान्त अनुभव करता है। आखिरकार, इस व्यथा का कारण क्या है...?? अन्तर्आत्मा की गहराईयों में गोते लगाने के उपरान्त मुझे यह ज्ञात हुआ कि कौन हूँ मैं....?, मेरा अस्तित्व क्या है...?, मेरा भविष्य क्या है...? या फिर मेरे इन सवालों को केवल एक वाक्य के जवाब में यह कहकर टाल दिया जा सकता है कि-"मैं एक स्त्री हूँ एवं मुझे इस पितृसत्तात्मक समाज द्वारा बनाए गए कायदे कानूनों पर ही चलना है।' इस पितृसत्तात्मक समाज ने पूर्व से ही मेरे जीवन की सीमाएँ तथा स्वतन्त्राएँ निर्धारित कर रखी है। क्या मुझे उड़ने के लिए एक मुक्त आसमान पाने का अधिकार नहीं है.....?? इस आधुनिकता एवं वैश्वीकरण के दौर में भी मेरे प्रति समाज की धारणा में परिवर्तन क्यों नहीं हो रहा है....?? आज भी स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रहना पड़ रहा है। उनके खिलाफ समाज में यौन-हिंसा व्याप्त है। आज स्त्रियाँ अपने ही देश में धनी-अँधेरी-सड़कों पर बेखौफ अकेले घूम नहीं सकती।

आज हमारा समाज 'नारी सशक्तिकरण' की बात कर रहा है। मानो ऐसा प्रतीत होता है कि महिलाएँ स्वयं ही सशक्त नहीं होना नहीं चाहती तथा उन्हें सशक्त बनाने का दायित्व किसी और पर है। इससे बेहतर यह होता है कि सशक्तिकरण के बजाय स्त्री-पुरुष समानता की बात होती। क्योंकि यदि हमारा समाज लिंग-भेद की व्यवस्था से मुक्त होगा तब स्वतः ही नारियों का एक सशक्त व्यक्तित्व उभरेगा। साथ ही हमारे इस पुरुष-प्रधान समाज में महिला सुरक्षा की बात भी बड़े ज़ोर से की जाती है। किन्तु लोगों का ध्यान उन असामाजिक तत्वों की ओर नहीं जाता जिनके कारण आज स्त्रियाँ असुरक्षित है।

हालाँकि वर्तमान समय में स्थितियाँ बदल रही है। अब समाज में नारी के अधिकारों के प्रति जागरूकता देखी जा रही है। स्त्रियों के दृष्टिकोण में बहुत परिवर्तन आया है। अब वह एक अधिक स्वतन्त्र तथा मुखर इकाई के-

रूप में समाज में खड़ी है। उनमें एक सशक्त, स्वयंशासी तथा तमाम सीमा-रेखाओं के प्रति प्रश्नाकुलता है। अब नारी ने विभिन्न क्षेत्रों को खुद को साबित कर यह दिखा दिया है कि वे किसी से कम नहीं.... चाहे वो खेल हो, विज्ञान हो या फिर राजनीति का ... स्त्रियों ने अपना परचम सभी क्षेत्रों में लहराया है। महिलाओं ने आजादी के बाद से सामाजिक रूढ़िवादिता की जंजीरों को तोड़ने का कार्य भलीभाँति किया है। स्मृति ईरानी, हिमा दास, प्रियंका चोपड़ा आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में प्रसिद्धि हासिल कर देश को गौरवान्वित किया है। साथ ही अनेक अखिल भारतीय परीक्षाओं में महिला-अभ्यर्थी शीर्ष सूची में रही है। जैसे- टीना डाबी, अनु कुमारी, के. आर. नंदिनी आदि। ये महिलाएँ स्वयं सशक्त होने के साथ-साथ समाज के लिए एक प्रेरणा-स्त्रोत भी बन चुकी है।

अतः हम देखते हैं कि नारी की स्थिति में समय के साथ बहुत-परिवर्तन हुआ है। उनका अब एक मुखड़ व्यक्तित्व उभरकर सामने आने लगा है। आज महिलाएँ सशक्त हो रही हैं। उनमें एक अच्छा इंजीनियर, डॉक्टर, प्रशासक, राजनेत्री आदि की छवि देखी जाने लगी है। किन्तु फिर भी ऐसी महिलाएँ केवल मुट्ठी भर ही हैं तथा भारत के अधिकतर स्थानों में महिलाओं के प्रति लोगों का उपेक्षित दृष्टिकोण ही है। ऐसी स्थिति में हमारा प्रयास स्त्री व पुरुष के मध्य व्याप्त असमानता को समाप्त करने की दिशा में होना चाहिए। इससे महिलाएँ आत्मनिर्भर व स्वतन्त्र बनेंगी तथा साथ ही उनके खिलाफ होनेवाले विभिन्न अपराधों में भी कमी दर्ज की जा सकेगी। आखिरकार स्त्री-पुरुष दोनों के सहयोग के बिना देश का विकास संभव नहीं है।

• अर्चना
(हिंदी विशेष
प्रथम वर्ष)

— • —

रक्षक कौन ?

— कहानी

फरवरी की एक सुबह थी। आधा महीना बीत चुका था लेकिन दरवाज़े पे धरना दे रही अनब्याही दुल्हन की तरह ठंड कुहासे की धूनी जमाए बैठी थी कि बिना ऋतुराज से ब्याहे ये चौखट तो न छोड़ूँगी। पेड़-पौधे और आसमान मज़े में तमाशबीन बने हुए थे और इंसान लाचार सास की तरह जेबों में हाथ डाले घूम रहे थे। ठंड की प्रकृति भी बड़ी विचित्र है, आती तो है बिल्कुल धीरे-धीरे लेकिन हफ़्ते दो हफ़्ते में सारा मायका लाग सामान में भरकर ससुराल उठा लाती है। फिर दाल भात में मूसलचंद बनने की बारी तो हमारी ही होती है। खैर ये सर्दी की लगन की कहानी तो है नहीं। वो कभी और सुनाऊँगा। ये कहानी तो एक दूसरे ही परिवार की है; उसके घर बार की है।

तो जिस परिवार की मैं बात कर रहा हूँ उसकी मुखिया से मेरी जान पहचान ज्यादा पुरानी नहीं है। कॉलेज के शुरुआती दिनों में मोहतरमा से परिचय हुआ और उसके बाद पूरे तीन साल उनका हमारे गरीबखाने में आना-जाना लगा ही रहा। बड़ी-बड़ी भूरी आँखे, लंबी पतली नाक, सुगठित धावकों जैसा शरीर सुनहरा और भूरा फर और लंबी, लहरिल घनी पूँछ उनकी पहचान थे। बड़े प्यार से हमने उनका नाम एलिजाबेथ रखा था (इतिहास में स्नातक कर रहे थे, मित्रों, आदत की मजबूरी कह लीजिए) पर बोल चाल की भाषा में पूरा कॉलेज उन्हें अल्ली के नाम से जानता था। वैसे अल्ली के नखरे भी पूरे रानियों वाले ही थे। मसलन बिस्कुट उन्हें सिर्फ क्रीम वाले ही पसंद थे पर इससे पहले की वो भोग लगाएँ, किसी को करीने से उस पर से क्रीम हटानी होती थी। हमने कई बार उसे अलग तरह के बिस्कुट

खिलाने की कोशिश की, हर तरह के खाद्यान्न मैदान में उतारे गए पर अल्ली हर कुछ दिनों के रसास्वादन के उपरांत उन्हें नकार ही देती थी। ब्रेड, दूध, दही इत्यादि सब महीने में एक-डेढ़ हफ्ते उसके खाने का हिस्सा बनते थे और फिर जब अल्ली ऊबकर उपवास पे बैठ जाती थी तो साथ के बाकी कुत्ते गिन्नी, हेनरी, ताशा इत्यादि उसकी पीठ पीछे सब चट कर जाते थे। अल्ली सही मायनों में उनकी रानी थी। जब भी कोई नया-नवेला भूले-भटके उनसे मिलने आता तो अल्ली सबसे आगे होती और बाकी सभी बगल में पूँछ हिलाते अपनी बारी का इंतजार करते। इनमें से ताशा के तेवर कभी-कभी थोड़े बगावती हो उठते थे तो पूरे हॉस्टल में चीनी कम्युनिस्टों के राज में होने वाले चुनाव के जैसा माहौल हो जाता था। सबको पता है कि अल्ली को कोई गद्दी से उतार नहीं सकता पर जब तब ताशा कोशिशें करना अपना मौलिक अधिकार समझती थी। अलबत्ता रोज़-रोज की ये झड़पें हमें रोज के आदतन राजनैतिक चिंतन से फुरसत के दो पल ज़रूर देती थीं। और पूरा हॉस्टल कंज़र्वेटिव और वामपंथ में बँट जाता था। क्रांति के नारे लगने शुरू हो जाते थे पर अपने झगड़े के राजनैतिक रूप से बेखबर अल्ली और ताशा अंततोगत्वा पटाक्षेप कर, पर्दे के पीछे साँधिया बाँध लेते थे। अब इन इंसानों को डिप्लोमेसी कौन समझाए!

वो फ़रवरी की सुबह भी ज्यादा अलग न थी। शनिवार होने की वज़ह से कक्षाएँ कम थीं तो सभी अड्डे पर जमा हुए थे। वाद-विवाद अपने चरम पर था। चाय की चुस्कियों के बीच आगामी चुनाव की चर्चा केतलियों में खौल रही थी। तभी बगल में भौंकती अल्ली की आवाज़ ने सबका ध्यान खींचा। किसी तमाशे की आशा में जब टोली ने उस ओर देखा तो सबकी हँसी छूट पड़ी। अपने मुँह में दो नन्हे-नन्हे पिल्ले दबाए ताशा अल्ली को देखकर शरारत से मुस्कुरा रही थी और अपने श्वान जीवन के ग्यारह बसंत देख चुकी अल्ली बड़े कौतूहल से उसे निहार रही थी। देखते-ही-देखते अल्ली दौड़ी-दौड़ी ताशा के पास पहुँची और शांति से पिल्लों के बगल में लेट गई। भावी पीढ़ी के विकास की खातिर दोनों पार्टियों ने अपने मतभेद भुलाकर गठबंधन कर लिया था और हम भोली जनता बस बैठे रह गए।

खैर अब हमारे सामने एक नया ज्वलंत मुद्दा खड़ा हो गया था- उत्तराधिकारियों के नामकरण का प्रश्न। कुल मिलाकर तीन पिल्ले थे जिनके नामकरण को लेकर संघवादियों और नारीवादियों में बड़ी तना-तनी थी। पिल्लों की पहचान और अधिकारों के मुद्दे उठाए जा रहे थे। परंपरा और जीव-आत्म-धर्म रक्षा पर ज़ोर-शोर से लेख लिखे जा रहे थे। इधर हमारे जैसे कुछ अवसरवादियों ने धीरे से बिस्कुट का प्रलाद बाँटकर गुल्लू, बिल्लू, पल्लू का नामकरण कर दिया और पत्ते भी छपवा दिए। अब भाई, मोहब्बत और जंग में सब जायज़ है और ये तो मोहब्बत और जंग दोनों का ही मामला था। अंततोगत्वा हम पिल्लों के नामकरण में सफल हुए और शान से उसे होस्टल के श्वान विभाग का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। खैर हमारे इस कदम की काफी संवैधानिक आलोचना हुई जो अधिक उल्लेखनीय नहीं है। कुल मिलाकर इतना कह लीजिए की दंगों में बसें जलाने वाले कर्तव्यपरायण, जागरूक नागरिकों ने भी हमें अराजक घोषित कर दिया और बात जब अंत-विभागीय स्तर पर पहुँच गई तो आदतन युद्ध विराम लगाकर दो महीने हमने होस्टल के बाहर अपनी एक तमाशबीन प्रवृत्ति वाली सखी के यहाँ शरण ली। वहाँ से सिर्फ कॉलेज आना-जाना होता था और अपरिष्कृत सूचनातंत्र का आलम कह लीजिए कि अल्सी की खबरों से हम अकसर बेखबर ही रहते थे। इतना ही पता चल पाया कि नारीवादी पंथ की किसी महोदया ने खिसियाकर आंतरिक शिकायत विभाग में "खूंखार कुत्तों के बीमत्स आतंक" के विरोध में लिखा हुआ एक ज़ोरदार लेख जमा कर श्वान-मुक्त कैंपस का अभियान शुरू कर दिया था। अब मित्रों, ये आंतरिक शिकायत विभाग भी न बड़ा ही उद्दंड सा जीव है जो हर कॉलेज के बड़े से प्रशासन की किसी भी छोटी सी सोह में जबरन स्थापित किया जाता है, वो भी बड़े लोकतांत्रिक तरीके से गाजे-बाजे के साथ। और इसके पश्चात इसमें से पहले बाजे गायब होते हैं और अंततः लोकतंत्र। मसलन, भौतिक विभाग के पांडे जी जो चार साल पहले विभागाध्यक्ष थे, आज तक उनका नाम विभाग के बोर्ड पर अंकित है जबकि भगवत्कृपा से पांडे जी दो साल पहले ही विश्वविद्यालय से सिधार चुके हैं। और त्रिपाठी जो कॉलेज में पांडे जी का खबरी माना जाता था, आजकल विभाग का काम-काज देखता है। सही मायनों में देखता ही है क्योंकि धूल फाँकती कुर्सियों और मेज़ों के ना पत्र

रखने की जगह है और न ही तशरीफ़ रखने की। किन्तु विद्यार्थियों की सुविधा का विशेष ध्यान रखते हैं त्रिपाठी 'जी' और तब तो और भी जब मामला "हमारी प्रिय बहनों" का हो। हमने भी ठान लिया कि चाहे कोई कुछ भी कर ले, हम अल्ली के परिवार को बेघर नहीं होने देंगे। पर्दे के पीछे मामला सुलझाने पर सहमति बनी और अड़ी पर दोनों पक्षों की सभा आयोजित हुई। "क्या करते हो लेखक! (हम इसी नाम से मशहूर हुआ करते थे) काहे बेकार की बहस में जल रहे हो विदिशा जी को? अभी उन्हें सेमिनार में भी जाना है। मिट्टी में लोटने वाले कुत्ते ही तो हैं, कहीं भी रह लेंगे!"

"मिट्टी रह कहाँ गयी है त्रिपाठी? सब जगह तो आपके पिताश्री ने मँचगांड़ रखे हैं और जो पेड़ बचे थे, उनके पर्चे छपवा दिए! पता नहीं चुनाव लड़ रहे थे या जंग जो इतने सूली चढ़ गए!"

"आप मर्यादा में रहकर बात कीजिये लेखक महोदय! नारीवादी संगठन ज़ोरशोर से श्रीमान की इस मुहिम में उनके साथ है। और आप क्यों इतने उत्तेजित हो रहे? पर्यावरण वैसे भी बड़ा ही संघवादी विषय है। संघी हैं क्या जो सड़क के कुत्तों को अवतार बताने आए हैं?"

"सही कह रही हैं विदिशा जी! हम अपने कॉलेज में ऐसी 'अराजक', 'रूढ़िवादी' विचारधारा बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं करेंगे। विकास के डिस्कोर्स में ऐसे बेलगाम पर्यावरणवाद का कतई कोई स्थान नहीं! ये कालेज के विद्यार्थियों की सुरक्षा का मामला है।"

"विद्यार्थियों की ही बात है तो रेफरेंडम करा लीजिए! हम भी तो जानें किसकी सुरक्षा खतरे में है। अल्ली के सुंड---"

"कैसा अशोभनीय नाम है, एक अदना सा, घिनौना, निर्दयी, स्वार्थी जीव जो अपनी सुरक्षा के सिवा कुछ सोच नहीं सकता, जिसे न परिवार का मतलब पता है और दूसरों का फेंका खाता है, उसको नाम देकर आप किस प्रकार की पितृसत्ता प्रचारित कर रहे?"

"जहाँ तक स्वार्थ और सुरक्षा की बात है विदिशा, मुझे तो ये भाव कहीं और ही---"

"बस बहुत हुआ लेखक! आंतरिक शिकायत विभाग का अध्यक्ष होने के नाते मैं अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए इस कैंपस को कुत्ता-मुक्त घोषित करता हूँ। तुम्हें रेफरेंडम कराना है तो कर लो कोशिश।"

"धन्यवाद त्रिपाठी जी! कॉलेज की तरफ से मैं इस निर्णय के लिए

आपका आभार व्यक्त करती हूँ। अब मैं चलती हूँ, आज हमारी संस्था संयुक्त राष्ट्र के राजनायिकों के सहभाग में प्रकृति पूजा पर सेमिनार आयोजित कर रही है। मैं पैनल में हूँ। पुनः मिलेंगे।"

मुस्कुराते हुए जब वो बाला गर्वित स्वर में ये जानकारी देकर निकली तो मैं निरुत्तर रह गया। सचमुच पर्यावरण प्रतिगामी है, अपने लोकल पर्यावरण की रक्षा करना रूढ़िवाद है क्योंकि ये ग्लोबल का ज़माना है! इसमें वैश्विक कार्बन उत्सर्जन मुद्दा हो सकता है। लेकिन अल्ली का परिवार नहीं। क्योंकि एक वैश्विक पर्यावरण पर खतरा है और दूसरा कॉलेज के माहौल पर। दाँव पर संभावनाएँ हैं।

खैर आंतरिक शिकायत विभाग ने सूचना जारी कर 'लोकतांत्रिक तरीके से हुए' समाधान के अंतर्गत अल्ली के परिवार को बाहर निकलवा दिया और हमने रेफरेंडम की तैयारियाँ शुरू कर दी। अल्ली और उसके झुंड ने बच्चों के साथ एक पार्क में शरण ली। अल्ली के अधिकारों के हेतु लड़ने में हम इतने व्यस्त हो गए कि अल्ली से ही मिलने का समय न मिल पाया, न ही उसे कुछ खिलाने का। ऐसे ही एक महीना बीत गया और मार्च के रंगों की जगह गुलमोहर के तीखे जवान शोलों ने ले ली। चाय की गर्मी अब सहन ना होती थी कि तभी उड़ती-उड़ती खबर आई कि बाहर किसी ने गन्ने के रस की दुकान खोल ली थी। एक तो वैसे भी रेफरेंडम ने होस्टल का माहौल गरम कर रखा था तो मैंने उस दोपहर गन्ने का रस पीने की ठानी और मध्यान्ह होते ही बाहर निकल गया। गन्ने वाले ने एक छोटी सी गुमटी बनाकर उसमें गन्ने भर रखे थे और खुद बाहर एक चादर की छत बनाकर उनका रस निकाल रहा था। उसकी इस संपत्ति-वासना पर मुझे दया आई, "खुद धूप में एक पतली सी चादर तानकर खड़ा है और अपनी दौलत को चटाई बिछाकर अंदर गुमटी में बिठा रखा है। मानव सचमुच संचयवादी जीव है, बाँटना सीखा---" अभी मैं ये सोच ही रहा था कि मेरी नज़र उसकी गुमटी के बगल में फैली एक तिरंगी चादर पर पड़ी जो तनिक मोटी थी और दो डंडों और गुमटी के सहारे खड़ी थी- हरी, सफ़ेद, केसरिया चादर-बस बीच में एक अशोक चक्र की कमी थी। उस चादर के नीचे तारा और अल्ली मज़े से सो रहे थे और बगल में गुल्लू, बिल्लू, पल्लू खेल रहे थे। मेरी आशंकाओं के विपरीत न तो उनका स्वास्थ्य ही गिरा था और न ही वो नैराश्य से घिरे दिख रहे थे। अपितु उन्हें देखकर ऐसा लगता

था मानो आजन्म यहीं रहे हों। गन्ने वाले ने मुझे उन्हें निहारते देखा तो बोल पड़ा, "क्या देखत हो बाउजी ? बड़े नीक कुकुर हैं ई। सब ! चुप्प करके पड़े रहते हैं, जो माई बनाके देती है, मजे से खींच लेते हैं। हमारे लल्ला लोग आते हैं तो उहो खुश हो जात हैं। बिचारे बाहर पड़े रहत रहन, तो हम नेता जी की बिदाई उठा लाये, अब चैन पड़ा है इनको।" मैं निरुत्तर रह गया, एक तरफ मुझे अपने पहले अनुमान पर ग्लानि हो रही थी तो दूसरी ओर उसके इस असाधारण से पशु प्रेम पर आश्चर्य। ये दिहाड़ी पर जीनेवाला, बीस-बाईस की कच्ची उम्र का परिवार वाला नौजवान इतना अनोखा कैसे हो सकता है? न तो इसने कभी शहर के प्रदूषण में साँस ली थी, न ही पर्यावरण संरक्षण पर कोई सेमिनार ही सुना होगा, आखिर इसका यह पशु-प्रेम किसकी देन --- तभी पीछे से मंदिर की घंटी गूँजी तो मैं पीछे मुड़ा और नंदी के पीछे छिपे नन्हे से शिवलिंग पर मेरा ध्यान गया। मानो मुझे सारे उत्तर मिल गए और मैं अपने सामने खड़े साक्षात पशुपति के समक्ष छोटा महसूस करने लगा। उस दिन के बाद तो ये रोज का क्रम बन गया। मैं हर दोपहर खाने का सामान लेकर किसन के यहाँ धमक पड़ता और अल्ली के झुंड को खिलाते हुए चाव से उसके गाँव की कहानियाँ सुनता - उसके गाँव की पगडंडियों से गुजरती पवन में घुले लोकगीत, उसके चूल्हे से आती मिट्टी की खुशबू, उसकी माई के हाथों से आती घी की सौंधी महक और उसकी घरवाली के गोबर से लीपे हाथ, उसके गाय की थान की नवरंगी हरियाली और उसके गले में बँधी घंटी की धुन पर झूमते नन्हें चरवाहे मेरी आँखों के सामने जीवंत हो उठते। मानों मैं अलकापुरी में बसे वृंदावन का वृत्तांत सुन रहा होऊँ।

एक दिन ऐसे ही सावन की आहटों के बीच जब मैं किसन की दुकान पर पहुँचा तो देखा कि उसकी दुकान बंद थी और बगल में अल्ली का परिवार प्रश्नसूचक निगाहों से मुझे देख रहा था। मैंने उन्हें खाना दिया और अगल-बगल में पूछा तो पता लगा कि दो दिन पहले एक चुनावी जुलूस बाज़ार से निकला था। उनमें से एक महोदय की नज़र जब अल्ली की छत पर पड़ी तो उन्होंने उसे खींच लिया और किसन को खूब डाँट लगाई - गद्दार, मूर्ख, जाहिल और जाने क्या-क्या। फिर बीच में एक कागज का चक्र लगाकर वो अल्ली के आशियाने का झंडा बनाकर साथ ले गए। किसन ने

उन्हें समझाने की कोशिश की कि ये नेताजी की दी विदाई है तो उन महोदय ने उसे कहा, "जिनका है, समझ ले उन्हीं ने वापस ले लिया। कल से यहाँ गलती से भी दिख न जाइयो वरना अच्छा नहीं होगा। गँवार कहीं का!"

किसन चला गया था। मैं स्तब्ध था, मानो अल्ली का ही नहीं, बल्कि मेरा भी संसार लुट गया हो। मेरी नज़र फिर गुमटी के दरवाजों के बीच दबे एक पुराने अख़बार पर गई। जिसपर लिखा था - संविधान के अनुच्छेद 51A के अंतर्गत नागरिकों का ये मौलिक कर्तव्य है कि उन्हें जीव मात्र के प्रति दया भाव रखना चाहिए और पर्यावरण, वन्यजीवों, नदी, जंगल, झील इत्यादि के संरक्षण में योगदान करना चाहिए।

मैंने उसे खींचना चाहा कि तभी अल्ली मेरे हाथों से अख़बार छीनकर ले गई और उसे पिल्लों के ऊपर बिछा दिया।

राष्ट्र और संविधान का यह समीकरण मेरी समझ के परे था। अंततः रक्षक कौन है? राष्ट्र या उसके लोगों द्वारा बना-बिगड़ा संविधान? आपको कुछ समझ आए तो अवश्य बताइएगा।

• शाम्भवी
(राजनीति विज्ञान विशेष
द्वितीय वर्ष)

पंजाबी कविताएँ : विविध रंग

'मैनूँ की होया मैथों गई गवाती मैं'

(बुल्लेशाह)

मुझे क्या हो गया है ?
मुझमें से 'ममत्व' लुप्त हो गया है
मैं एक पगली के समान कहता हूँ—
ओ लोगों, मुझे क्या हो गया है
जब मैं अपने अन्तःकरण में झाँकता हूँ
तो मैं वहाँ स्वयं को नहीं पाता
तुम ही मेरे भीतर निवास करते हो
सिर से पैर तक तुम ही विद्यमान हो
भीतर और बाहर तुम ही हो।

'एक अहसास'

(सुरजीत पातर)

इधर डूबता सूरज है
उधर झड़ते पत्ते हैं
इधर विह्वल नदी है
उधर सूना पथ है
मेरे चारों ओर ये
दर्पण क्यों लटका दिए

'पत्र' (सुरजीत पातर)

उसे पत्र भेजते रहो मोह से भरे
वरना गैरों की नगरी में
शारव नंगी हो जाएगी ।

'कवि साहिब' (सुरजीत पातर)

मैं पहली पंक्ति लिखता हूँ
और डर जाता हूँ राजा के सिपाहियों से
पंक्ति काट देता हूँ
मैं दूसरी पंक्ति लिखता हूँ
और डर जाता हूँ बाग़ी गुरिल्लों से
पंक्ति काट देता हूँ
मैंने अपने प्राणों की खातिर
अपनी हज़ारों पंक्तियों को
इसे ही क़त्ल किया है
उन पंक्तियों की आत्माएँ
अक्सर मेरे आसपास ही रहती हैं
और मुझे कहती हैं:
कवि साहिब
कवि है या कविता के क़ातिल हैं आप ?
सुने मुनसिफ बहुत इंसाफ़ के क़ातिल
बड़े धर्म की पवित्र आत्मा को
क़त्ल करते भी सुने थे
सिर्फ यही सुनना बाक़ी था
कि हमारे वक़्त में ख़ौफ के मारे
कवि भी बन गए
कविता के हत्यारे ।

'मेरा पता' (अमृता प्रीतम)

आज मैंने
अपने घर का नंबर मिटाया है
और गली के माथे पर लगा
गली का नाम हटाया है और
हर सड़क की
दिशा का नाम पोंछ दिया है
पर अगर आपको मुझे
जरूर पाना है
तो हर देश के, हर शहर की,
हर गली का द्वार खटखटाओ
यह एक शाप है, यह एक वर है
और जहाँ भी
आज़ाद रूह की झलक पड़े
– समझना वह मेरा घर है।

'राजनीति' (अमृता प्रीतम)

सुना है राजनीति एक क्लासिक फिल्म है
हीरो: बहुमुखी प्रतिभा का मालिक
रोज अपना नाम बदलता है
हीरोइन: हकूमत की कुर्सी वही रहती है
एक्सट्रा: लोकसभा और राजसभा के मैम्बर
फाइनेंसर: दिहाड़ी के मज़दूर
कामगार और खेतिहर
संसद: इनडोर शूटिंग का स्थान
अख़बार: आउटडोर शूटिंग के साधन
यह फ़िल्म मैंने देखी नहीं
सिर्फ़ सुनी है
क्योंकि सेंसर का कहना है –
'नॉट फॉर अडल्स।'

'हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते'

(पाश)

हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते
जिस तरह हमारे बाजुओं में मछलियाँ हैं,
जिस तरह बैलों की पीठ पर उभरे
सोटियों के निशान हैं,
जिस तरह कर्ज़ के कागज़ों में
हमारा सहमा और सिकुड़ा भविष्य है
हम ज़िन्दगी, बराबरी या कुछ भी और
इसी तरह सचमुच का चाहते हैं
हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते
और हम सब कुछ सचमुच का देखना चाहते हैं
ज़िंदगी, समाजवाद, या कुछ भी और...

'संविधान'

(पाश)

संविधान
यह पुस्तक मर चुकी है
इसे मत पढ़ो
इसके लफ्ज़ों में मौत की ठंडक है
और एक-एक पन्ना
ज़िंदगी के अंतिम पल जैसा भयानक
यह पुस्तक जब बनी थी
तो मैं एक पशु था
सोया हुआ पशु
और जब मैं जागा
तो मेरे इंसान बनने तक
ये पुस्तक मर चुकी थी
अब अगर इस पुस्तक को पढ़ोगे
तो पशु बन जाओगे
सोए हुए पशु।

'वे कब चाहते हैं'

(बलबीर माधोपुरी)

वे कब चाहते हैं
कि चंदन के बूटे वृक्ष बनें
बिखेरें सुगंधियाँ
बाँटे महक दसों दिशाओं में
अभागे समय में
दूषित वातावरण में।
वे चाहते हैं
नीरों को बाँटना
पीरों का बाँटना।
वे चाहते हैं, लहूलुहान गलियों में
शकुनी नारद चलें
साझे चूल्हे की मढ़ी पर
एक चौमुखा दिया जले।
वे कब चाहते हैं
पेड़ों के झुरमुट हों
बढ़ें, फलें, फूलें
वे चाहते हैं
वन में वृक्ष हों अकेले-अकेले
या फिर रगड़ते रहें बाँस आपस में
और लगती रहे आग।
वे कब सहन कर पाते हैं
दूसरों के सिरों पर रंगीन छतरियाँ
ठंडे-शीत मौसमों में कोई गरमाहट
आँगनों में गूँजती, खनखनाती हँसियाँ।
वे तो चाहते हैं
पीछे लौट जाए
चढ़ा हुआ पानी
दूध में उबाल की तरह

भूख में ख़याल की तरह
निगली जाएं शिखर दोपहरियाँ
दरख़्तों के साये
धरती के जाये
बेटों के पते।
वे कब चाहते हैं
त्रिशूल - तलवार को ढाल
बनाएं हलों की फाल
निकालें कोई नई राह
वे तो चाहते हैं
भोथरी कर देना
तीखी इनकी धार!

भारतीय भाषाओं का साहित्य और हिंदी सिनेमा

साहित्य और सिनेमा ऐसे माध्यम हैं जिनमें समाज को बदलने की ताकत सबसे अधिक है। सिनेमा और साहित्य एक-दूसरे के पूरक है। सिनेमा समय-समय पर साहित्य की ओर मुड़ा है। हिंदी उपन्यासों पर ही नहीं वरन् विभिन्न भाषाओं की साहित्यिक रचनाओं पर अनेक चर्चित फिल्मों का निर्माण हुआ है। भारत में बनी पहली फिल्म ही आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक 'हरिश्चन्द्र' पर आधारित थी। इसी तरह कई अन्य फिल्में जो हिंदी उपन्यासों पर आधारित थी और वे सफल भी रही। प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' पर इसी नाम से वर्ष 1963 में फिल्म बनी। कमलेश्वर के उपन्यास 'पति पत्नी और वो' पर इसी नाम से फिल्म बनी। फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' पर आधारित फिल्म 'तीसरी कसम' बनी। इसी तरह मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' पर फिल्म 'रजनीगंधा' निर्मित हुई। कतार लंबी है... । बॉलीवुड में ऐसी अनेक फिल्में है, जो हिंदी उपन्यासों और कहानियों को आधार बनाकर बनायी गयी।

हिंदी से इतर भी हिंदी सिने निर्देशकों ने ऐसी फिल्में भी बनायी जो अन्य भाषाओं के उपन्यासों पर आधारित रही। फिर चाहे वे बंगला भाषी उपन्यास हो अथवा पंजाबी साहित्य की श्रेष्ठ कृतियाँ।

हिंदी सिनेमा पर बांग्ला भाषी साहित्यकार प्रमुख रूप से छाए रहे। शरत चन्द्र के उपन्यास 'देवदास' पर इसी नाम से फिल्म बनी, और एक बार नहीं, बल्कि तीन बार... तीनों बार फिल्म चर्चित और सफल रही। फिल्म 'परिणीता' भी शरत चन्द्र के उपन्यास पर ही

आधारित थी। विमल मित्र के उपन्यास 'साहिब बीबी और गुलाम' पर वर्ष 1962 में इसी शीर्षक से फिल्म बनायी गयी। हिंदी फिल्मों की माइल स्टोन कही जाने वाली फिल्म 'आनंद मठ' भी बंकिम चन्द्र चैटर्जी के उपन्यास पर आधारित थी।

हिंदी सिने लेखकों, निर्देशकों और प्रोड्यूसरों ने उर्दू रचनाओं पर भी फिल्में बनाने से गुरेज नहीं किया। कई फिल्में बनी, जो सुपर हिट रही। वर्ष 1948 में बनी फिल्म 'जिद्दी' इस्मत चुगताई के उपन्यास पर आधारित थी। सुपरहिट फिल्म 'उमराव जान' जिससे अभिनेत्री रेखा ने खूब ख्याति बटोरी, वह मीरजा हादी रूसवा के उपन्यास 'उमराव जान' पर आधारित थी। फिल्म 'मंटो' सआदत हसन मंटो की कहानियों पर आधारित रही। अनुराग कश्यप द्वारा निर्देशित फिल्म 'ब्लैक फ्राइडे' उपन्यासकार एस॰ हुसैन जैदी की पुस्तक पर आधारित है। सोनाक्षी सिन्हा द्वारा अभिनीत फिल्म 'नूर' फिल्म पाकिस्तान की लेखिका सबा इम्तियाज़ के उपन्यास कराची - यू आर किलिंग पर आधारित थी। हालाँकि यह फिल्म पहले पर्दे पर हिट साबित नहीं हुई।

राजस्थानी संस्कृति एवं क्षेत्र विशेष को हिंदी फिल्मकारों ने अपनी फिल्मों में बेशक अधिक जगह दी हो। लोकेशन्स, वेशभूषा, सेट्स एवं गीत-संगीत को बहुत प्रमुखता दी है परन्तु राजस्थानी साहित्य को लेकर कम ही फिल्में हिंदी सिनेमा में प्रवेश कर पाई। विजयदान देथा के उपन्यास 'दुविधा' पर इसी नाम से फिल्म भी बनी और वर्ष 2005 में फिल्म 'पहेली' भी इसी पर आधारित थी।

गुजराती उपन्यासों ने नहीं, परन्तु वहाँ के नाटकों ने फिल्म निर्देशकों को काफी प्रभावित किया। कई हिंदी फिल्में गुजराती नाटकों से प्रेरित होकर निर्मित हुई। फिल्म '102 नॉट आउट' गुजराती नाटक से प्रेरित फिल्म है जो बाप-बेटे के रिश्ते के साथ वृद्धावस्था के प्रति बदलते नजरिए को दर्शाती है। वर्ष 2014 में आई फिल्म

'सुपर नानी' भी नाटक से ही प्रेरित है। फिल्म 'ओह माय गॉड' की कहानी गुजराती नाटक 'कांजी विरुद्ध कांजी' से ली गयी थी। 2005 में प्रदर्शित फिल्म 'वक्त' गुजराती नाटक का ही रूपांतरण मानी जाती है।

पंजाबी साहित्य की महत्वपूर्ण लेखिका अमृता प्रीतम के उपन्यास 'पिंजर' को आधार बनाकर इसी शीर्षक से फिल्म बनायी गयी जिसमें मनोज वाजपेयी और उर्मिला मातोंडकर ने प्रमुख भूमिकाएँ निभायी थी।

क्षेत्रीय भाषाओं की रचनाओं के साथ-साथ अनेक विदेशी कथाकारों की कहानियों और उपन्यासों पर भी फिल्मों का निर्माण हुआ और यह सिलसिला अनवरत जारी है। इस तरह कहा जा सकता है कि फिल्में भाषायी प्रसार को गति देती है। फिल्मों ने भाषा की सीमाओं और दीवारों को तोड़कर राष्ट्रीयता का प्रसार किया है।

• शिखा
(राजनीति विज्ञान, द्वितीय वर्ष)

— • —

अकेले होने का सुख

• पुस्तक समीक्षा

श्रीमोई पियू कुंडू अकेली महिलाओं के प्रति समर्पित रही हैं। उनकी पुस्तक 'स्टेटस सिंगल' में 3,000 अकेली औरतों की कहानियाँ हैं। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में अकेले जीवन बिताने वाली महिलाओं की जिंदगी के कुछ अनछुए पहलुओं पर लिखा है। किसी महिला के लिए अकेले जीवन व्यतीत करना एक सपने जैसा ही है, जो कि कड़े संघर्ष से कतई कम नहीं है। अकेली महिलाओं को भारतीय समाज में समाज से इतर समझा जाता है। उन्हें अक्सर 'आप अभी तक कुँवारी हैं?, "अभी तक कोई मिला नहीं क्या?" "घर वाले लड़का नहीं देख रहे?"... आदि-आदि सवालों से जूझना पड़ता है।

वह अकेली अपनी मर्जी से है, इसलिए नहीं कि कोई मनपसंद शख्स नहीं मिला। वह समाज की कथित ओछी नैतिक मान्यताओं, मर्यादाओं और पाखंडों को किनारे रखकर अपनी स्वतन्त्रता का जश्न मनाती दिखती है। श्रीमोई कुंडू के उपन्यासों में महिला जीवन के विभिन्न आयाम दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें महिलाओं के अलग-अलग किरदारों, समाज में उनकी भूमिका और समाज की प्रतिक्रिया की झलक साफ-साफ दिखती है।

'स्टेटस सिंगल' रचना महिलाओं के स्टेटस को लेकर हमेशा उठते रूढ़िवादी प्रश्नों, छवि एवं विचार-धाराओं तथा तीस वर्ष के बाद बिना विवाह किए

स्वतन्त्र रहने वाली स्त्रियों पर केन्द्रित है। भारत में महिला चाहे शादीशुदा हो, सिंगल हो। तलाकशुदा हो - समाज को हमेशा उसके 'स्टेटस' के साथ दिक्कत रहती है। जो कहीं न कहीं उनकी बातों में, मजाक में, कटाह में या फिर दया के रूप में जाहिर होती है। वह कितनी भी कोशिश क्यों न कर लें, समाज की घूरती निगाहों से वह बच नहीं सकती। एक महिला का अपने परिवार से अलग रहकर किसी अन्य शहर में रहकर बिना शादी के नौकरी करना बहुत मुश्किल होता है। - समाज को यह बात कतई हजम नहीं होती। समाज अपने मन में ऐसी अनब्याही औरतों की अपनी ही बनायी छवि गढ़ने लगता है। यही नहीं समाज द्वारा उसे कुलटा, कलमुँही, बिगड़ैल, बेशर्म, सरफिरी या समलैंगिक जैसे विशेषण देकर उससे दूरी बना ली जाती है। लेखिका ने यह भी बताया है कि कैसे समाज में 'शादी' करना कितना महत्वपूर्ण काम है। हर माता-पिता अपनी लड़की की जल्दी से जल्दी शादी करने को आतुर है। - शादी के बाजार में उतारने को आतुर। उन्होंने इस बात को भी बखूबी उठाया है कि समाज ने शादी के साथ लड़की के उसकी एक उम्र भी तय कर दी है - तीस साल से पहले। - यानि तीस साल से पूर्व ही लड़की की शादी कर देनी चाहिए। क्योंकि उसके बाद लड़का नहीं मिलता या उसके बाद माँ बनने की आशंका कम हो जाती है। वह इस मुद्दे को भी उठाती है कि कैसे शादी और माँ बनने को एक साथ जोड़कर देखा जाता है। यहाँ बिना शादी किए माँ बनना घोर पाप है। वह अपनी इस रचना में शादी कराने के लिए लड़कियों एवं उनके परिवारजनों द्वारा विभिन्न प्रकार की सजगरियों

तथा कास्मेटिक्स के इस्तेमाल के बारे में भी बताती है। फिर चाहे पहली रात पर अपनी वेजाइना की सर्जरी होयों न हो। वह यह सवाल भी उठाती है कि एक महिला से शादी करने से पहले उसकी वर्जिनिटी के बारे में सवाल क्यों किए जाते हैं।

लेखिका अपनी इस पुस्तक द्वारा यह समझाने का प्रयास करती है कि सिंगल रहना भी एक choice है। सिंगल रहने और शादी न करने की वजह लड़कियों में कोई खराबी है... ऐसा नहीं है। वह इसके द्वारा समाज को बिना ब्याही, सशक्त, सक्सेसफुल औरत को स्वीकृत कराने एवं उसे भी समाज का एक हिस्सा मानने को जरूरी बतलाती है। वह औरतों को उनके सिंगल रहने एवं खुद से प्यार करने को प्रेरित करती हैं। यह पुस्तक एक नए संदर्भ में, एक नए ढंग से लिखी गयी है। जहाँ स्त्री के जीवन का अंतिम उद्देश्य शादी, बच्चे और परिवार माना जाता है, एवं उसके अकेले रहने को एक 'टैबू' समझा जाता है। यह पुस्तक पाठकों के लिए खुद को समझने एवं तीस की उम्र के बाद भी खुश रहते हुए जिन्दादिल एवं सम्मान के साथ जीने के लिए प्रेरित करती है। लेखिका श्रीभोई ने बड़ी बेबाकी से, सरल अंदाज में अत्यन्त संवेदनशील मुद्दों को पाठकों के सामने रखकर चिन्तन की एक नयी भूमि तैयार की है।

— • —

• शिखा
(राजनीति विज्ञान, द्वितीय वर्ष)

कॉमेडी या ट्रेजेडी - ?

- फिल्म समीक्षा

' तुम इतना जो मुस्कुरा रहे हो
क्या ग़म है, जिसको छुपा रहे हो '

समय बदला, दुनिया बदली परिवेश बदला - और बदल गया हीरो - तथा हीरो को 'हीरो' मानने का चस्का। 'जोकर' टॉड फिलिप्स द्वारा निर्देशित वर्ष 2019 की एक अमेरिकी मनोवैज्ञानिक थ्रिलर फिल्म है, डी.सी कॉमिक्स के चरित्रों पर आधारित इस फिल्म में ख़ाकीन फीनिक्स ने शीर्षक चरित्र जोकर की भूमिका निभायी है। यह फिल्म एक असफल स्टैंडअप कॉमेडियन आर्थर फ्लेक का अनुसरण करती है। - जो बाद में गोथम सिटी में अपराध और अराजकता के रास्ते पर चला जाता है।

यह एक ऐसी कहानी है, जिसका विलेन ही उसका हीरो है। एक जोकर - जिसकी माँ उसे 'हैप्पी' कहकर बुलाती है, पर जो अपनी पूरी जिन्दगी में कभी खुश नहीं रहा। जोकर, यानि 40 वर्षीय आर्थर फ्लेक गॉदम नामक काल्पनिक शहर में रहता है। वह दुकानों के बाहर करतब दिखा कर ग्राहकों का ध्यान खींचने का काम करता है। नौकरियों की कमी के कारण गॉथम में सफाई कर्मी हड़ताल पर है। हर जगह कूड़ा बिखरा पड़ा है। गंदगी, बदहाली और लोगों में बढ़ रहा आक्रोश, आपराधिक वारदातें - गॉदम शहर का यह रूप कहीं न कहीं आज के दौर के कई शहरों की याद दिलाता है।

ऐसे तनाव भरे माहौल में ज्यादातर निचले तबके के लोगों की तरह आर्थर को भी कदम-कदम पर घृणा, तिरस्कार व दुत्कार मिलती है। वह एक स्टैंडअप कॉमेडियन बनना चाहता है। वह जीना और जीने देना चाहता है। पर बदले में मिलती है उसे केवल निराशा। वह एक मानसिक रोग से ग्रस्त है जिसके कारण वह बेचैन होने पर अथवा मन में नकारात्मक भाव जगने पर अपनी हँसी को रोक नहीं पाता। उदासी, निराशा व लाचारी भरी यह हँसी अक्सर उसके आस पास वालों की नाराजगी का सबब बन जाती है। ध्यान रहे, यह वह हँसी है, जो उसके जीवन को मुस्कुराने नहीं देती क्योंकि इसी कमजोरी का फायदा उठाकर लोग उसका मज़ाक बनाते हैं। ये वे लोग हैं जो क्रांकीट के जंगल के अकेलेपन, खीज, कुंठा और संत्रास से स्वयं त्रस्त हैं और आर्थर को देख मानो उनके भीतर का दानव जाग जाता है - और यहीं से शुरू होती है प्रतिशोध की हिंसा, द्वेष व वितृष्णा। इसी बीच फिल्म तत्कालीन समाज की राजनीति, शोषण-उत्पीड़न, मूल्यों का विघटन और मानसिक रोग जैसे संवेदनशील मुद्दों को उठाती है।

फिल्म का निर्देशन और फीनिक्स की बेहतरीन अदाकारी, हिंसक जोकर में तब्दील आर्थर के प्रति दर्शकों की सहानुभूति प्रकट करती है। फिल्म का सेट, आर्थर की कृश काया और पार्श्व संगीत कवि मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' की याद दिलाता है जो असहज किंतु रहस्यात्मक है। डॉयलाग इसी अंधेरे को गति देते हैं - "मुझे लगता था कि मेरी जिंदगी एक ट्रेजेडी है, लेकिन आज अहसास हुआ, ये तो एक

कॉमेडी है।" मूवी इतनी डार्क है कि थियेटर का अंधेरा पर्दे से बेहतर लगता है। जोकर कलरफुल होते हुए भी डार्क है। वो सबसे ज्यादा दुख के क्षणों में हँसता है, ठहाके लगाता है। कहता है - "एक चुटकुला याद आ गया था, अगर पूछो - कौन सा? तो कहता है, रहने दीजिए, आप नहीं समझ पाएंगे।" जोकर जिसकी जिन्दगी में सुख का एक भी क्षण नहीं आया, क्योंकि उसकी जिन्दगी एक कॉमेडी थी।

निर्देशक टॉड फिलिप्स की अब तक की यह सबसे बेहतरीन फिल्म कही जा सकती है। शॉकिंग इफेक्ट्स में उन्होंने कमाल किया है। सुरुवात की चाह रखने वाले दर्शक इसे नकारात्मक कहकर खारिज कर सकते हैं, किन्तु यह जीवन का कड़वा सच है, जिसे चाशनी में घोलकर नहीं समझा जा सकता। फिल्म यह दावा नहीं करती कि वह आपको प्रसन्न करेगी, किन्तु यह आपकी विचारधारा को, विचार भूमि को विस्तृत फलक देने में अवश्य सफल होगी। अतः आवश्यकता है उत्तर आधुनिकता की दौड़ में जो पीछे छूट गया है, उसे समेटने की और मानसिक रोग जैसे विषयों को मुख्य धारा में लाने की।

— • —

• प्रियल
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

मानवीय संबंधों की परस्परता

– पत्र

असामाजिक रूप से तस्लीमा नसरीन के साथ किए गए विवाह के बाद अपने पिता को लिखी गई 'रुद्र मोहम्मद शहीदुल्लाह की चिट्ठी—

• यह पत्र पिता-पुत्र के संबंधों, पीढ़ियों के अंतर और उनकी सोच, सामाजिक रूढ़ियों और मान्यताओं को दर्शाते हुए पीढ़ियों के बीच की गलतफहमियों और द्वन्द्वों को दूर करने की एक नयी सोच व विचारभूमि तैयार करता है। साथ ही व्यक्ति के खुद से प्यार करने के क्रम में समस्त मानवता से प्रेम की ओर बढ़ने की राह भी दिखाता है

अब्बा,

रास्ते में किसी भी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई। नसरीन को घर पहुँचाकर परसों ही घर लौटा हूँ। आप लोगों से राय-मशविरा और वैवाहिक औपचारिकता के बिना ही उससे शादी करके घर ले आया तो आप लोगों को बहुत दुख पहुँचा था। लेकिन मैं अपने जीवन को कुछ इसी तरह से मानकर चला हूँ। हमारे बीच में जो गलतफहमी रही है, उन्हें कभी भी चुनौतीपूर्ण और बाप-बेटे के बीच कलह की वजह नहीं माना था। बल्कि यह यकीनी तौर पर हमारे विश्वास के अलग-अलग मत थे।

व्यक्तिगत रूप से आपको मैंने कभी गलत नहीं समझा। मैं नहीं जानता, आप लोग मुझे किस तरह से देखते, समझते रहे हैं। यह तो कड़वी सच्चाई है कि दो पीढ़ियों के बीच में हमेशा अंतर और मतभेद रहेगा, स्वाभाविक सी बात है। जिस तरह से आपके और आपके पिताजी के बीच में वैचारिक मतभेद रहा होगा, उसी तरह आज आपके और मेरे बीच और बाद में निश्चित रूप से मेरे और मेरे

बच्चों के बीच में यह फर्क चलता रहेगा। इस सोच और द्वन्द्व को कभी नहीं रोका जा सकता है। केवल तर्कसंगत और सहज बनाया जा सकता है। मैं भी इस द्वन्द्व को मिटा नहीं पा रहा हूँ। अगर इसे मिटा पाता तो इसका परिणाम अच्छा होता या नहीं, नहीं जानता। यदि ऐसा होता तो इस धरती पर मनुष्य जीवन का बदलाव यहीं थम गया होता।

मुझे याद नहीं आ रहा है कि आपने इन 26 वर्षों में अपने बच्चों को प्यार से भी कभी पास बुलाया था या नहीं। अपने आस-पास के बच्चों के प्रति उनके पिताओं का लाड़-प्यार देखकर खुद को अनाथ-सा महसूस करता था। लेकिन इस बात का मैंने कभी दुख नहीं जताया। बचपन से मुझे खेलना बहुत अच्छा लगता था। अगर किसी भी खेल-कूद में शामिल रहा होता तो एक दिन एक अच्छा खिलाड़ी बन पाता। लेकिन आप खेलने नहीं देते थे। सोचता था, शायद अच्छे लोग खेल-कूद जैसी चीज नहीं करते। फिर भी मन में सवाल उठता था कि मुझे खेलना अच्छा क्यों लगता था? क्या यह माना जाए मैं एक अच्छा इंसान नहीं हूँ? आज समझ में आता है कि खेलने या नहीं खेलने के बीच इंसान की अच्छाई-बुराई का कोई संबंध नहीं है। तकलीफ होती है।

मैंने डॉक्टर बनने का सपना देखा था। एक दिन आप से भी बड़ा डॉक्टर बनूंगा ताकि खुद को और आपको गर्व हो सके। संतान अगर बाप से दो कदम आगे बढ़ जाए तो पिता को अपार सुख मिलता है और उस समय इस तरह की तैयारी कर भी रहा था। लेकिन महान मुक्ति युद्ध के बाद देश में न जाने कहाँ से एक बड़ा बदलाव आ गया था। एक देश!! एक नए देश का जन्म, नई सोच, सब कुछ बदल रहा था। सभी के दिलो-दिमाग में नए सपने जाग रहे थे। हर कोई अलग-अलग तरीके से सोच रहा था।

इन सभी के बीच मुझे मेरा पुराना सपना फीका लगने लगा था। अब तो उससे भी बड़ा, एकदम नया और स्फूर्तिवान सपने को अपनी आँखों में बसा लिया था। मैंने

गंभीर होकर लेखन शुरू कर दिया है। हांलाकि, पहले से ही थोड़ा बहुत लिखता भी रहा हूँ। लेकिन इस बार पहले की हर सीमाओं से जाकर उस समय की सोच एवं भावनाओं से मुक्त होकर लिखने लगा हूँ। अब चिन्तन से, जीवन से, विश्वास से, आदर्श से, इस तरह की बहुत सारी चीजों के साथ द्वन्द्व होने लगा है। इस दौरान बहुत सारी चीजों के साथ गलतफहमियाँ पैदा होने लगी।

अक्सर अंदर की कुंठाओं के परिणाम स्वरूप अप्रत्याशित बर्ताव करने लगा था। ऐसे लोगों से मुलाकातें होने लगी हैं, जिनके साथ हमारा और हमारे विश्वास का तालमेल खूब जम रहा था। फिर उनके साथ भी वही द्वन्द्व हुआ है। आश्चर्य की बात है कि सभी के साथ द्वन्द्व क्यों होने लगा? भीतर ही भीतर बहुत बैचेन हो गया हूँ। क्या यह राह गलत है? क्या मैं गलत दिशा की ओर जा रहा हूँ? कभी-कभार यह लगने लगा कि मैं सही हूँ और मेरी राह भी।

अगर इंसान खुद से प्यार करना सीख जाए तो दुनिया में इससे बेहतर कुछ नहीं हो सकता। जो खुद से प्यार कर सकता है, वह अपने परिवार से भी प्यार करेगा। परिवार से प्यार करने का मतलब अपने पूरे गाँव को प्यार करना। एक पूरे समुदाय को प्यार करना। वैसे एक गाँव का मतलब ही तो है पूरी दुनिया। फिर पूरी दुनिया खुशहाल होकर जिएगी। इस दुनिया में मनुष्य ने न जाने कितने ही बड़े-बड़े काम किए हैं, तो क्या वह एक छोटे से परिवार को खुशहाल नहीं बना सकता? जरूर बना सकता है। अगर मनुष्य थोड़ा तर्कसंगत एवं उदार भाव का हो जाए तो न जाने कितनी ही समस्याएँ खत्म हो जाएंगी। रिश्ते सहज हो तो कार्य भी आसान हो जाते हैं। यह सब हमारे चाहने पर निर्भर करता है।

मैं नहीं जानता इस खत को पढ़कर मेरे बारे में आप अच्छा सोचेंगे या बुरा। ईद से पहले पहले घर आऊंगा

माँ से कहना बड़े मामा से 4000 रुपए लेकर मुझे भेज दे। घर की रसोई के लिए कुछ भी सामान नहीं खरीद पाया हूँ। बाहर का खाना बहुत महंगा और स्वास्थ्य के लिए भी ठीक नहीं है। ननिहाल से माँ को मिली जायदाद का बस इतना ही तो फायदा है। हो सकता है इस बात से आपको ठेस पहुँचे। स्वाभाविक है, क्योंकि वह आपका ससुराल है। इससे हमें क्या आपत्ति हो सकती है। शिमु, मंगला में पढ़ेगी और बाबू, स्कूल जाएगा। आप लोगों के ना चाहते हुए भी यह सब होगा। दुआ करना।

— शाहिदुल्लाह

दिनांक 18 जून 1983
मोहम्मदपुर, बांग्लादेश

संदर्भ पुस्तक: बांग्ला अकादमी द्वारा प्रकाशित
'रूद्र की जीवनगाथा'
लेखक: तपन बागची
पृष्ठसंख्या: 19

• यह अनुवाद रूद्र मोहम्मद शाहिदुल्लाह के परिवार की अनुमति से किया गया है।

— • —

हिंदी अनुवाद
• नरगिस सुलताना
(बी० ए० प्रोग्राम, प्रथम वर्ष)

Campus

आस पास

ज़िंदगी का फ़साना

दास्तां-ए-ज़िन्दगी का एक ही फ़साना है
आगे क्या करना है, सबको तुमसे बस यही जानना है।

तुम 10th में हो ना, अभी तक नहीं सोचा कौन-सा स्ट्रीम लोगे ?
बोर्ड आ रहें हैं तुम्हारे अब तो सोच लो किस कॉलेज में क्या कोर्स करोगे ?
तुम तीसरे वर्ष में हो ना ! तो अब आगे क्या ?
घर वापस आगे नौकरी या रुको-रुको शायद तुम्हें अभी पढ़ना है क्या ?

इन सवालों के घेरों में हम अपने जवाब भूल जाते हैं
समंदर-सी ठहरी जिन्दगी को हम तालाब बना जाते हैं।
मुंतज़ीर बन कुछ और सोच रहे थे परन्तु इन बातों में आ जाते हैं,
आसमान में उड़ने से पहले हमारे पंख कुतर दिए जाते हैं।

हम पीछे कितनी जंग लड़ कर आए हैं वह तो आज तक किसी ने नहीं नापा है ?
क्या दास्तां-ए-जिंदगी का सिर्फ यही एक फसाना है ?

सुनो,
हम "आगे क्या करना है" इस सवाल कि वहशत नहीं रह सकते
हम अपने रथ के खुद सारथी हैं किसी गैर की अपनी जिन्दगी में दस्तक को नहीं सह सकते।
अगर नहीं भी हमने सोचा है तो सोच लेंगे ना,
कारवां हमारा है बागडोर हमारे हाथ में है खुद आगे इसको घसीट लेंगे ना।

अपने वजूद की तलाश में हमारा खुद से बाहर न निकलना सही है
सच्चा मोती जो बनना है, तो समंदर की गहराई में सीप बन ठहरना सही है।

हम आगे की ना सोच कर खुद से बेखुदी नहीं करते हैं!
जरा-सा वक्त क्या दिया हमने खुद को तुम तो सोचते हो
हम खुद से मोहब्बत नहीं करते हैं!
"आगे क्या करना है" इस सवाल से हटकर भी बहुत से तराने हैं,
दास्तां-ए-ज़िन्दगी के एक नहीं ना जाने कितने फ़साने हैं!

• रंजना वर्मा
बी० कॉम, द्वितीय वर्ष
(श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स)

— • —

प्रेम की दास्ताँ_
'मुझसे पहले -सी मुहब्बत मेरे महबूब न मांग'

"मता- ए-लौहो- कलम छिन गई तो क्या गम है,
कि खूने-दिल में डुबो ली है उंगलियाँ मैंने"

फैज़ अहमद फैज़ की यह पंक्तियाँ उर्दू गज़लों और नज़्मों में उनकी विलक्षण प्रतिभा को रेखांकित करती है। उनकी शायरी ने उर्दू गज़लों और नज़्मों को एक नया रंग, एक नया तेवर दिया है। नया रूप लिए हुए उनकी शायरियों ने पाठकों को अपनी ओर ऐसे आकर्षित किया है, जैसे फूल भँवरो को करते हैं।

फैज़ का पहला कविता संग्रह जुलाई 1945 में प्रकाशित हुआ। उसका नाम था - 'नक्शे-फरियादी'। इसकी संक्षिप्त भूमिका में 'फैज़' ने लिखा है - "इस मज्मुआ की इशाअत एक तरफ एतराफ़े- शिकस्त (पराजय की स्वीकृति) है। शायद इसमें दो चार नज़्में काबिले- बरदाश्त हो। लेकिन दो-चार नज़्मों को किताबी सूरत में तबा करवाना मुमकिन नहीं। उसूलन मुझे तब तक इंतजार करना चाहिए था कि ऐसी नज़्में ज़्यादा तादाद में जमा हो जाए। लेकिन यह इन्ज़ार कुछ अबस मालूम होने लगा है। शेर लिखना जुर्म न सही, लेकिन बेवजह शेर लिखते रहना ऐसी दनिशमंदी भी नहीं..."

इस संग्रह की 'मुझसे पहली-सी मोहब्बत मेरी महबूब न मांग' एक ऐसी नज़्म है जिसने प्रेम की दास्तां को एक अनोखे ढंग में प्रस्तुत किया है। पुरातन काल से प्रेम एक व्यापक विषय रहा है, अनेक कवि- कवयित्रियों ने प्रेम को

अपने अनुभवों से व्यक्त किया है। लेकिन प्रेम का वास्तविक स्वरूप और उसकी सार्थकता क्या है?

प्रेम मनुष्य को एक व्यापक दृष्टिकोण देता है, उसे बाँधता नहीं है, बल्कि उसे जीवन की जकड़न से मुक्त रखता है। परन्तु मोहब्बत इतनी सरल होते हुए भी शायद इतनी जटिल हो गई है, कि वह मनुष्य की आकांक्षाओं और इच्छाओं को पूर्ण करने में असफल होते हुए उसकी सार्थकता को ही परिवर्तित कर दिया और फिर मनुष्य प्रेम को उसके पूर्ण रूप में न देखकर 'प्यार' शब्द की तरह उसे अधूरा ही समझने लगा।

फैज़ अहमद फैज़ लिखते हैं, 'मुझसे पहली-सी मोहब्बत, मेरी महबूब न माँग, मैंने समझा था कि तू है तो दरख़्शाँ है हयात, तेरा ग़म है तो ग़मे-दहर का झगड़ा क्या है?' क्या मोहब्बत का रूप एक बार समाप्त हो जाने के बाद वैसा रहता है, जैसा वो हुआ करता था। समाप्ति के बाद पहली जैसी मोहब्बत नहीं मांगी जा सकती। भावनाओं के संसार के कुछ अपने नियम हैं। जब भावनाओं में लिपटा मनुष्य प्रेम में होता है, तो उसे ऐसा प्रतीत होता है मानों जीवन प्रकाशमान है और यदि उसका गम है, तो सांसारिक चिंता क्या है? उसका जीवन उसी से शुरू और उसी पर खत्म होता है। उसकी सुन्दरता, उसकी झील-सी आँखों में वह इस कदर खो जाता है कि उसको लगने लगता है कि 'तेरी आँखों के सिवा, दुनिया में रखा क्या है?'। लेकिन जब वह प्रेम रूपी जाल से बाहर निकलता है, तो उसे एहसास होता है कि 'और भी दुःख है जमाने में मोहब्बत के सिवा, राहतें और भी हैं, वसल की

सहत के सिवा।' क्या इश्क सचमुच एक जाल है? यह सत्य है कि मोहब्बत के सिवा जमाने में और भी दुःख है, आनन्द है, मिलन के आनन्द से सिवा और भी। मोहब्बत का अपना कोई गम नहीं होता, वह तो मनुष्य की इच्छाओं का गम होता है। जीवन दुःख और सुख का संगम है। शारीरी मोहब्बत से ऊपर उठते हुए कवि कहते हैं कि उन्होंने बाज़ार में जिस्म बिकते हुए देखे हैं और खून से लिपटे हुए कपड़े देखे हैं। ये गम ऐसे हैं, जिसके आगे मोहब्बत का गम कम लगता है।

फैज़ कहते हैं, 'लौट जाती है उधर को भी नज़र, क्या कीजे, अब भी दिलकश है तेरा हुस्न, मगर क्या कीजे।' मोहब्बत एक ऐसी अनुभूति है जहाँ हम स्वयं को भूल उस मोहब्बत में रम जाते हैं। ~~उस~~ मोहब्बत किसी भी इंसान को कितना बेबस, मजबूर और कमज़ोर बना देती है, कि निगाहें उस हुस्न की ओर बार-बार जाती है। लेकिन प्रश्न यह है कि प्रेम को हम इतने सीमित दायरे में ही क्यों देखते हैं? प्रेम यदि साधारण रहे तो कितना खूबसूरत और अभूतपूर्व है। प्रेम में न खुदा ढूंढा जाए, न चाँद या तारे, प्रेम को यदि प्रेम ही रहने दिया जाए तो बेहतर है।

फैज़ कहते हैं- 'मुझसे पहली-सी मोहब्बत मेरे महबूब न मांग'- ये बात सच है कि प्रेम कभी मरता नहीं, लेकिन राहें अवश्य अलग हो जाती हैं। उन राहों में बदलाव तो निश्चित है, तो फिर उन्हीं स्मृतियों में लौटना तर्कसंगत नहीं है। अक्सर जब सब समाप्त हो जाता है, टूटन इस कदर व्याप्त हो जाती है, तो फिर वैसी मोहब्बत जीवित करना मुश्किल सा लगता है।

इसलिए प्रेम यदि मरे तो उसे मर जाने दो। विष्णु खरे का कथन है - 'कम क्यों लौटना चाहते हैं स्मृति, ऋतुओं में जानते हुए कि लौटना एक गलत शब्द है।' यह शायरी हमारे समक्ष प्रेम के संसार के सामने कई सारे प्रश्न प्रस्तुत करती है और उत्तर उन्हीं के पास है, जिन्होंने कभी प्रेम किया हो। खैर किसने नहीं किया कभी!!!

• निहारिका शर्मा
(एम० ए० हिंदी
उत्तरार्द्ध)
रामजस महाविद्यालय

— • —

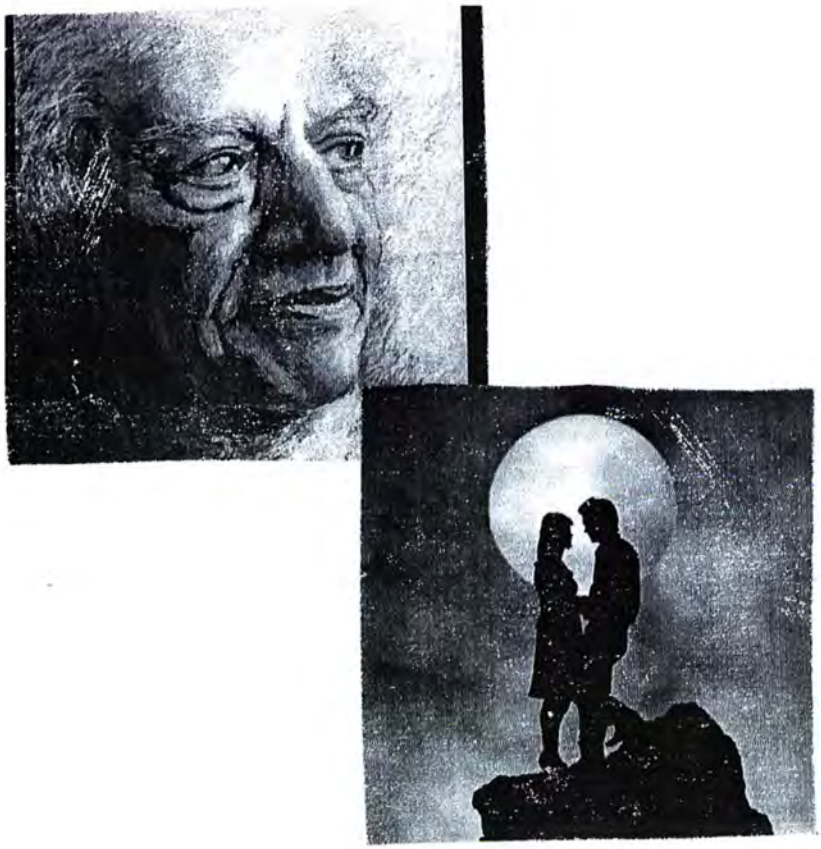

शिकायत है मुझे

मैं एक औरत से मिली
कुछ बात करने पर
वो थोड़ी सी खुली।
हाथ रसोई में अच्छे से बैठा है उसका,
खाना बनाती है स्वादभरा भरोसा है उसका।
मेरे, तुम्हारे जैसे कई लोगों के घरों में
फिर खुद के घर में,
साथ ही जिसके जिम्मे था बच्चों का स्कूल, ट्यूशन
और पालने - पोसने का,
क्योंकि यही तो खोजते हैं हम एक माँ में।

बातें खुली तो जाना
असलियत को मैंने क़रीब से पहचाना।
पहले तो माना था, पैसे कमाने से पैरों पर
खड़े हम होते होंगे,
आत्मविश्वास और आज़ादी के मायने शायद तब ही सच होते होंगे।
जरूरी नहीं,
जरूरी नहीं कि तुम कमाती हो तो, खर्च करने का हक़ भी रखती हो,
जरूरी नहीं कि इंसान हो तो, गलती करने की कुछ छूट तुम रखती हो।

खाने में नमक कम होने पर
आँखे दिखाना नहीं भूलते,
बच्चों के कम नम्बर आने पर
तुम्हें जिम्मेदार ठहराना नहीं भूलते,
काम से दस मिनट देर होने पर
सवालों की झड़ी लगाना नहीं भूलते,
जरूरतों को तुम्हारी
गैर जरूरी मानना नहीं भूलते,

महीने की पहली तारीख़ को
तुमसे तनख्वाह लेना नहीं भूलते।
हाँ, लेकिन
घर लौटने पर
तुम्हें पानी पिलाना भूलते हैं,
हालत खराब देखकर
तबीयत का पूछना भूलते हैं,
आराम की जरूरत होने पर
तुम्हारी चादर झटकना भूलते हैं,
भूखे रह जाने पर
रसोई में खड़े होना भूलते हैं।

भूलते हैं वो सब
जो याद रखा जाना था
फिर जरूरी क्यों तुम्हारे जीवन में
बस चुप रह जाना था।
शिकायत है मुझे।

उन सब बातों से जो झूठी आजादी देते हैं,
काम करने को आजादी बताकर
चार दीवारों में आज़ादी छीन लेते हैं।
शिकायत है मुझे।

क्या विरोध
आपत्ति
नाराज़गी
सिर्फ़ नीतियों से हो सकती है?
शासन, नेता, और सरकार के खिलाफ ही बस आवाज बुलंद
हो सकती है?

हाँ को हाँ
और
ना को ना

समझना इतना मुश्किल हो सकता है?
घर से निकलते इंकलाब के नारों को भी विरोध माना जा सकता है?
क्या हमारी आवाज़ भी नाराजगी जता सकती है?
जब औरत अपनी आज़ादी अपने घर में ही खो सकती है।

— • —

• श्रद्धा जैन
(हिंदी विशेष तृतीय वर्ष
लेडी श्री राम कॉलेज)

सब जल रहा है...

घर - आँगन, चौक - चौराहा,
सड़क - पटरी - प्लेटफॉर्म
सब जल रहा है...

वतन, ईमान, हमारा संविधान,
एकता और क़ौम
सब जल रहा है...

घर में असलम चाचा का
सिला हुआ कुर्ता,
सूट - सलवार,
तुलसी - चबूतरे में लगा
महफ़ूज़ मियाँ का
पत्थर नक़्क़ाशीदार
मेरी छत की दीवार के भरोसे खड़ी
पड़ोस की हरी पताका,
हमारी संस्कृति के दरख़्त पर लगा
मिश्रित फूल और शाख़ा
सब जल रहा है...

चौक पर खड़ी बापू की मूर्ति पर
डाला हार
'अब्दुल कलाम' मार्ग की ओर संकेत
करती दीवार
अगरबत्ती वाले की दुकान में लगी
हज़ की तस्वीर

नमाज़ के बाद लगी
बनारसी पान की दुकान पर भीड़
सब जल रहा है...

पापा के दफ़्तर से लेकर माँ के
मुक्त सभा की चौरवट
हिंदी शिक्षक का उर्दू लहज़ा और
मौलवी मास्टर का श्यामपट्ट
कॉलेज से लेकर विश्वविद्यालय
की छाती पर
पत्थर वाले हाथों का उठना
पुलिस की लाठी पर
धार्मिक नारों से लेकर हंगामे वाली
रातें तक
न्यूज़ चैनल से लेकर अखबारों की
बातें तक
सब जल रहा है...

किसी ने आग लगाई है शायद हर घर में
साजिश रंजिश भी कर
अब कटघरों में,
ये जो सत्ताधारी बैठे हैं मोटे तख्तों पर
इन्हें चिंता नहीं है ये टूटते दरख्तों पर
उठ रहा जो हर घर से धुँआ कुछ तो
पल रहा है
इतना तो तय है सब
अंदर ही अंदर जल रहा है
सब जल रहा है...

— • —

• कुमार मंगलम
(हिंदी विशेष प्रथम वर्ष) हंसराज महाविद्यालय

इस दौर का रंग

सातों रंगों से सजे आकाश के नीचे दबकर
हम आत्मा और रोशनी के खालीपन का रंग भूल जाते हैं
और सच्चाई के रंग से बचकर भागते हुए
हम अड़हुल के फूल, या चाँद तारों की कविताओं में अपना प्रेम साबित करने में लग जाते हैं
और अपनी गलियों से उठती हुई अँधेरी चीखों को
भूल जाते हैं।
लेकिन
वह रंग लगातार नालियों में बहता रहता है
अपने हिस्से की लाशें लिए
और हम अपने गटर की बदबू से अघाकर
थूककर आगे बढ़ जाते हैं
और चैन की साँस भरते हुए
अपने अपने रोशन घर या ऑफिस के रस्ते मुड़ जाते हैं।

वह रंग
किसी फैक्ट्री में लगे आग से पैदा होता है
और पहरेदारी पर लगे मज़दूर
उस रंग में लथपथ
राख होते हुए
हमेशा के लिए भूखे रह जाते हैं
और अगली सुबह
हम अपने अखबारों के रंगीन चित्रों में कहीं
संख्याएँ गिनते हुए
एक और कप चाय की फरमाइश करते हैं
और झिझक तक नहीं पाते।
फिर
ये सोचते हुए

बहुत अच्छा महसूस करते हैं
कि आज बारिश भी हो सकती है।

मगर यह दौर
युद्धभूमि के नीचे दबी हुई लाशों का दौर है
और मिट्टी में धँसते हुए भी
हमें बंदूकों के ख़िलाफ़ बात करनी होगी।
यह अँधेरा
हत्यारों के हाथों को छुपाए रहेगा तब तक
जब तक तुम तक मशाल जलाकर इस कुएँ में कूद नहीं जाते।

ये दुनिया सड़ कर काली पड़ती जा रही है
मेरी मिट्टी भी और तुम्हारा आकाश भी
और साथ ही हम और तुम भी।
जो इस दौर का रंग है
तुम उसकी बात करो
क्योंकि वही तुम्हारा रंग है
और मेरा भी
काला।

• हर्ष भारद्वाज
(वेंकटेश्वर महाविद्यालय)

— • —

अभिज्ञान शाकुन्तलम् – आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

कविकुलगुरु कलाधर महाकवि कालिदास का भारतीय साहित्यकारों में ही नहीं अपितु विश्व के मर्धून्य साहित्यकारों में विशिष्ट स्थान है। भारत के 'शेक्सपियर' कहे जाने वाले कविचूडामणि कालिदास ने यद्यपि काव्य की प्रत्येक विधा के माध्यम से संस्कृत - साहित्य को समृद्ध बनाया है तथापि नाटकों में सर्वोत्कृष्ट कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का विशेष महत्त्व है। यह संस्कृत साहित्य का ही नहीं विश्व साहित्य का भी सर्वोत्कृष्ट नाटक है। "अभिज्ञानस्मृता शकुन्तला = अभिज्ञानशकुन्तला इस व्युत्पत्ति से इसका यह नाम सार्थक है। इसके विषय में संस्कृत साहित्यशास्त्र में उक्ति प्रसिद्ध है —

"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला"

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का मूलकथानक कवि द्वारा महाभारत से लिया गया है। यह महाभारत के आदि पर्व में वर्णित शकुन्तलोपाख्यान से लिया गया है जिसमें 6 अंकों में दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम, वियोग और पुनर्मिलन का वर्णन है। राजा दुष्यन्त मृग का पीछा करते हुए महर्षि कण्व के आश्रम में प्रवेश कर शकुन्तला को देखते हैं। शकुन्तला भी राजा पर अनुरक्त होती है। राजा अपने विदूषक के द्वारा शकुन्तला पर मुग्ध होने को बताता है। शकुन्तला भी दुष्यन्त के प्रति अपनी आसक्ति व्यक्त करने के लिए प्रेम-पत्र लिखती है। राजा वहाँ आकर शकुन्तला से [विवाह] गान्धर्व- विवाह करता है। राजा उसे हस्तिनापुर लौटने से पूर्व अपनी अँगूठी निशानी के रूप में देकर वहाँ से चला जाता है। इधर आश्रम में आतिथ्य न करने के कारण महर्षि दुर्वासा शकुन्तला को शाप दे देते हैं। महर्षि कण्व को शकुन्तला के गान्धर्व-विवाह एवं गर्भवती होने का समाचार मिलता है। अतः वे आश्रम के शिष्यों के साथ शकुन्तला को हस्तिनापुर भेज देते हैं। किन्तु महर्षि दुर्वासा के शाप के कारण राजा को कुछ भी स्मरण न होने के कारण शकुन्तला अप्सरा व अपनी माता मेनका के साथ चली जाती है। अँगूठी मिलने पर राजा को स्मरण हो जाता है। राजा दैत्यों पर विजय प्राप्त कर स्वर्ग से लौटते हुए मारीच ऋषि के आश्रम में शकुन्तला और पुत्र भरत से मिलते हैं। तत्पश्चात् मारीच ऋषि से आशीर्वाद प्राप्त कर

हस्तिनापुर पहुँचते हैं।
यह सम्पूर्ण नाटक का अतिसंक्षिप्त सार है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। अतः कवि समाज की रीतियों, प्रथाओं, स्थितियों को शब्दबद्ध कर प्रस्तुत करता है। महाकवि कालिदास का यह नाटक भी आधुनिक समाज के लिए दर्पण का कार्य करता है। कवि के उनकी कृति में वर्णित मूल्यों का संबंध आधुनिक जीवन शैली, विचार व्यवस्था से स्वतः ही परिलक्षित हो जाता है। महाकवि द्वारा कृत नाट्यकृति में दत्त भारतीय संस्कृति के अनुरूप अत्यन्त उत्तम उपदेश आज की युवा पीढ़ी के लिए भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना की शकुन्तला के लिए था।

शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥
(अभि॰ ४.१८ श्लोक)

महर्षि काश्यप के माध्यम से कालिदास उक्त यह श्लोक आज भी गुरु, सखा, पति, सेवक सभी के प्रति यथार्थ व्यापक दृष्टि-कोण लिए हुए है। हमारी पीढ़ी के आने वाले समय में भी ये मूल्य उतना ही महत्व रखते है। साहित्य हमें सर्वव्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। अनेकानेक समस्याओं का समाधान विवेक से स्वतः ही हो जाता है। साहित्य यथोचित व्यवहार की दृष्टि प्रदान करता है।

"भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।" (अभि॰ १.१६)

साहित्य हताश्य में भी सकारात्मकता प्रदान करता है। केवल नाट्य में ही अपितु जीवन में भी अवश्य भावी वस्तुओं के लिए हमें कोई ना कोई द्वार मिल ही जाता है। महाकवि ने अभिज्ञानशाकुन्तल में कन्या के महत्व का जो कथन किया है वह वर्तमान सन्दर्भ में भी शब्दशः चरितार्थ होता है। कन्या का संरक्षण धन की तरह ही किया जाता है। यद्यपि वर्तमान परि-स्थितियाँ उसके वैपरीत्य में हैं शायद इसी कारण उनका संरक्षण आवश्यक है।

"अर्थो हि कन्या परकीय एव" (४.२१)

'शाकुन्तल' नाटक में शार्ङ्गरव के द्वारा शकुन्तला को कहा गया- "मैत्री परीक्षा करके करनी चाहिए' आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान में हम संज्ञान में न रहते हुए अनेकधा अपनी अनायासकृत गतिविधियों के कारण संकट में पड़ जाते हैं। परीक्षा करके किया गया कार्य अन्ततः कष्टदायक नहीं होता। अज्ञात मैत्री वैर में कब परिणत हो जाती है ज्ञात ही नहीं होता।

"अतः परीक्ष्य कर्त्तव्यं विशेषात्संगतं सहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरभवति सौहृदम् ॥"

इस प्रकार नाटक में वर्णित अनेक तथ्य आधुनिक प्रसंग में भी सार्थक, वैज्ञानिक सिद्ध होते हैं। वस्तुतः कवि कोई भी वर्णन हृदय की मार्मिकता के साथ-साथ सत्य तथ्यों के आधार पर करता है जो युग युगों तक मार्गदर्शक का कार्य करती है। कोई भी काव्य पाठक को / सहृदय को आनन्द के साथ-साथ जीवन का व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। महाकवि कालिदास भी विशाल कवि परिपाटी में अपने सार्थक रसपरक रचना के कारण सदैव जीवित हैं। जो अनेक मूल्यों का आधान वर्तमान में भी जीवन्त रूप में करते हैं।

• प्रियांशी
एम० ए संस्कृत, उत्तरार्द्ध)
हंसराज महाविद्यालय

लेखक से मुलाकात

दिनांक 7 फरवरी 2020, मिरांडा हाउस रोजाना की तरह ही खूबसूरत लग रहा था। लॉन में बिछी घास पर ओस की बूंदें, सूरज के प्रकाश के कारण किसी पारदर्शी मोती की भांति चमक रही थी। हर तरफ हलचल... ये हलचल कोई नयी बात नहीं थी। मिरांडा की हर सुबह लगभग ऐसी ही होती है। आज कुछ नया था तो वो हिंदी विभाग परिवार के लिए था। आज हिंदी विभाग के साहित्यिक कार्यक्रमों की श्रृंखला का एक महत्वपूर्ण था, वो कार्यक्रम जिसका इंतजार हर साहित्य प्रेमी को बेसब्री से होता है। हिंदी विभाग की प्राध्यापिकाओं द्वारा आयोजित यह कार्यक्रम हम सभी विद्यार्थियों के लिए एक उपहार स्वरूप होता है।

आज के साहित्यिक कार्यक्रम का शीर्षक - - 'लेखक से मुलाकात'। जितना दिलचस्प इस कार्यक्रम का शीर्षक है, उतना ही रोचक यह कार्यक्रम भी होता है। सुबह 11 बजे, कार्यक्रम के प्रथम सत्र का समय, SAC (स्टूडेंट एक्टिविटी सेंटर) जहाँ हम सभी मौजूद थे। विभाग के कार्यक्रम में लगभग अधिकांश छात्राएँ ऐथनिक वेशभूषा में सज-सँवर कर आती है। आज भी वे अपनी आकर्षक सज-धज से अन्य विभागों की छात्राओं का ध्यान आकृष्ट कर रही थी। विभाग की प्राध्यापिकाओं के दिलो-दिमाग में सिर्फ कार्यक्रम के सफल होने की चिन्ता थी, जो उस समय उन सभी के चेहरों पर दिखाई दे रही थी।

हम सभी धागाएँ अपने-अपने स्थान पर बैठ चुकी थी हमारे बीच वे दो प्रसिद्ध शख्सियत आ चुकी थी, जिनके आने का हम सब बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। इस कार्यक्रम में आज कुछ खास था। वह यह कि - हम सुप्रसिद्ध साहित्यकार गीतांजलि श्री के साथ चर्चित इतिहासकार प्रो० सुधीर चन्द्र से भी रूबरू होने वाले थे। प्रो० सुधीर चन्द्र - जो मुख्य रूप से आधुनिक भारतीय सामाजिक चेतना के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते रहे हैं। उन्होंने 'गाँधी: एक असंभव संभावना', 'हिंदू, हिन्दुत्व, हिन्दुस्तान', 'गाँधी के देश में', 'हिंसा और अहिंसा के पार', 'निर्भरता और मोहभंग के बाद की उन्नीसवीं सदी के भारत में राष्ट्रीय चेतना का उदय' आदि पुस्तकों का प्रकाशन कर इतिहास के क्षेत्र को समृद्ध किया है। जितनी नामी शख्सियत, उतना ही सादगी भरा दोनों का व्यक्तित्व।

श्री सुधीर चन्द्र जी के व्याख्यान का विषय था - 'आज के समय में गाँधी'। उन्होंने अपने व्याख्यान में गांधी जी के व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख करते हुए कई प्रसंग साझा किए। उन्होंने बताया कि गांधी जी सदा एक बात पर जोर देते थे कि - 'ना करना सीखो'। हर दृष्टिकोण से सोच कर ना कहना। उन्होंने गांधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त को समझाया। उन्होंने यह भी बताया कि गांधी जी कहा करते थे कि - "कोई भी व्यक्ति सत्य होने का दावा नहीं कर सकता, अर्थात कोई भी पूरी तरह से परफेक्ट नहीं होता, गलतियाँ सभी से हो सकती है।" वे अपने विकट विरोधियों से भी बात करने को सदा तैयार रहते थे। इतिहास पुरुष होने के कारण वे सदा प्रासंगिक रहेंगे। हिंसा किसी

भी समस्या का समाधान नहीं हो सकती। 'प्रत्येक विपरीत स्थिति और झंझावातों में भी अपने सच के साथ रहने और खड़े होने का नाम ही गांधी है।' यह बतलाते हुए उन्होंने गांधी जी के जीवन, उनके विचारों तथा आंदोलनों को हमारे सामने रखा। अपने एक घण्टे के व्याख्यान में उन्होंने गांधी को पूरा तो नहीं परन्तु वर्तमान समय में गांधी जी की जरूरत और उनकी प्रासंगिकता को स्पष्ट किया। व्याख्यान के बाद धागाओं के साथ उनके प्रश्नोत्तर का सिलसिला शुरू हुआ। उन्होंने अत्यन्त शालीनता, धैर्य व सहजता के साथ मुस्कुराते हुए प्रिय-अप्रिय सभी प्रश्नों और जिज्ञासाओं का सन्तुष्टिजनक उत्तर दिया।

अब बारी थी द्वितीय सत्र की—

गीतांजलि श्री हमारे बीच पहले से ही मौजूद थी। उन्होंने अपनी प्रौढ़ रचनाशीलता द्वारा हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। उनकी पहली कहानी 'बेलपत्र' वर्ष 1987 में हंस पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। उपन्यासों में माई, हमारा शहर उस बरस, तिरोहित, खाली जगह, रेत समाधि उल्लेखनीय है। 'माई' उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद 'क्रासवर्ड अवार्ड' के लिए नामित अंतिम चार कृतियों में शामिल था। गीतांजलि श्री अत्यन्त साधारण परन्तु गरिमामय एवं प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व लिए दमक रही थी। उन्होंने अपनी बातचीत की शुरुआत अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'रेत समाधि' के कुछ अंशों को पढ़कर किया। उस उपन्यास के प्रभावशाली अंशों को सुनकर हम सबमें इसे पढ़ने की उत्सुकता जाग गयी। लेखिका ने अत्यन्त सहजता और सौम्यता से अपनी बातें रखी। गीतांजलि जी से पहला प्रश्न उनकी रचना 'तिरोहित' को लेकर किया गया जिसके प्रत्युत्तर में

उन्होंने हमें इस रचना की प्रेरणा क्या रही, वो बतलाया इसके साथ उनसे उनके लेखन के शुरुआती दौर, प्रकाशक से उनके संबंधों, उनकी रचनाओं के शीर्षकों आदि के बारे में प्रश्न किए गए। एक महत्वपूर्ण प्रश्न उनसे पूछा गया कि - 'आपकी रचनाओं के माध्यम से आपके व्यक्तित्व को कैसे जाना जा सकता है?' लेखिका ने इसका उत्तर अत्यन्त रोचक ढंग से देते हुए कहा कि - 'एक रचनाकार दो जिंदगियाँ जीता है एक वह, जो वो है सबके सामने और दूसरी - अपने पात्रों के माध्यम से - जिसे पाठक समझते और गुनते हैं।

इस तरह 'लेखक से मुलाकात' के ये दोनों सत्र संपन्न हुए। मिरांडा का हिंदी विभाग इस कार्यक्रम शृंखला के जरिए हमारे लिए यह अवसर उपलब्ध कराता है कि बिना किसी मध्यस्थता के हम अपने प्रिय रचनाकारों से रूबरू हो सकते हैं, बेरोक एवं बेहिचक अपनी जिज्ञासाओं और प्रश्नों के उत्तर जान पाते हैं। हिंदी विभाग परिवार के सदस्यों की जीवन रूपी पुस्तक में यह आयोजन एक खूबसूरत पन्ने की तरह जुड़ गया। इतिहास और साहित्य दोनों पक्षों को संजोये हुए यह आयोजन अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल और सार्थक रहा।

— • —

• शिवांगी द्विवेदी
(हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष)

साहित्य संसार

इस वर्ष कुछ चर्चित, प्रतिष्ठित और युवा साहित्यकारों को विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। सभी साहित्यकारों को हार्दिक बधाई !!

इस वर्ष के० के० बिरला फाउंडेशन की ओर से दिया जाने वाला व्यास सम्मान सुप्रसिद्ध लेखिका नासिरा शर्मा को उनके उपन्यास 'कागज की नाव' के लिए दिया गया।

मध्य प्रदेश हिंदी संस्थान की ओर से दिया जाने वाला भारत भारती सम्मान साहित्यकार उषा किरण खान को दिया गया।

हिंदी अकादमी की ओर से दिया जाने वाला शलाका सम्मान हिंदी साहित्यकार व आलोचक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी को दिया गया तथा गद्य विधा सम्मान डॉ. दूधोराज सिंह बेचैन को प्रदान किया गया।

वर्ष 2019 का साहित्य अकादमी पुरस्कार साहित्यकार नन्दकिशोर आचार्य को उनके काव्य संग्रह 'धीलते हुए अपने को' के लिए दिया जाएगा।

वर्ष 2019 का ज्ञानपीठ पुरस्कार मलयाली कवि अक्कीतम अच्युतन नंबूद्रिरी को दिया गया। तेजी से बदलते सामाजिक परिवेश में इनकी रचनाएँ मानवीय भावनाओं को बड़ी गहराई से उकेरती है। इनकी कविताओं में भारतीय दार्शनिक व सामाजिक मूल्यों का समावेश मिलता है, जो कि आधुनिकता व परम्परा के बीच एक सेतु की तरह है।

बनारस के युवा कवि विहाग वैभव को समकालीन कविता में अपनी पहचान बनाने के लिए वर्ष 2019 का भारत भूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार दिया गया। उन्हें यह पुरस्कार 'तद्भव' पत्रिका में प्रकाशित उनकी कविता - 'चाय पर शत्रु सैनिक' के लिए दिया गया।

साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार 2019 के लिए चयनित कृतियों में कविता की 11 पुस्तकें, कहानी की 6 पुस्तकें, 5 उपन्यास तथा 1 साहित्यिक आलोचना कृति शामिल है। कविता विधा में हिंदी के अनुज लुगुन को सम्मानित किया गया।

वर्ष 2019 में साहित्य जगत के बहुत से रचनाकार हमसे विदा हो गए। इनमें कृष्ण बलदेव वैद्य, कथाकार गिरिराज किशोर, गिरीश कर्नाड, गंगाप्रसाद विमल, कथाकार स्वयं प्रकाश तथा प्रसिद्ध अफ्रीकी अमेरिकी महिला साहित्यकार टोनी मॉरिसन शामिल हैं। इन सभी के निधन से साहित्य जगत में अपूरणीय क्षति हुई है। इन सभी को हमारी भावभीनी श्रद्धांजलि एवं नमन।

— • —

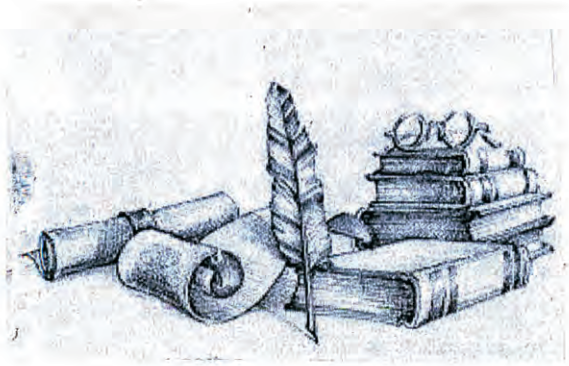

• काई लगी दीवार से
खिसकती है जैसे
पुरानी चिपकी हुई मिट्टी
हाथ से खिसक जाते हैं वैसे
प्यार, मुहब्बत और अपनापन
आग से खेलते खेलते
फुर्सत कहाँ मिलती है हाथ को
अपना पराया, ईर्ष्या आलोचना,
का समय
पहले से ही खत्म हो गया।
(खिरोद कुँवर / ओड़िया)

• पढ़ लिख कर अपमान के प्रति
चेतना युक्त होना
और निष्क्रियता को पोषित करना
इसके बजाय
अनपढ़ रहता तो अन्यायी के सिर पर
प्रहार तो करता
या दारू पीकर अपमान का घूँट
तो निगल जाता।
(नीरव पटेल / गुजराती)

• आँखें मौजूद हैं
देखो मत
औज़ार भी मौजूद हैं
उठो मत
पाँव की सेवा करो
लोग भी मौजूद हैं
लेकिन चीजों से भी
बदतर।
(के० शिवारेड्डी / तेलुगु

• हम दोनों प्रतीक्षा में हैं
मैं अपनी मंजिल की
तुम मेरी राह की
जाओ तुम वापिस चले जाओ
मैं अपनी राह खुद ही
ढूँढ लूँगी
राह न मिली तो बना लूँगी
मुझे राह बनानी आती है।
(पद्मा सचदेव / डोगरी)

• खुद को पा गया वायज़ मगर है
जरूरत आदमी को आदमी की।
मिला हूँ मुस्कुरा कर उससे हर बार
मगर आँखों में भी थी कुछ नमी-
(फ़िराक गोरखपुरी / उर्दू)

தமிழ் ગુજરાતી ଓଡ଼ିଆ ಕನ್ನಡ
বাংলা हिन्दी मराठी ਪੰਜਾਬੀ
नेपाली
తెలుగు اردو